THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_186207

UNIVERSAL LIBRARY

दूध का दूध और पानी का पानी

अर्थात्—

महाशय कुशवाहा के मिथ्या आक्षेपों का सभ्यता पूर्ण उत्तर
और स्वामी दयानन्द का असली फोटो

मुफ्त की राड न रिन्दों से निकाली होती ।
पहिले दस्तारे फजीहत तो संभाली होती ॥

लेखक:—

शास्त्रार्थमहारथी श्री पं० माधवाचार्य्य शास्त्री

प्रकाशक :—

माधव पुस्तकालय

धर्मधाम, १०३ए, कमलानगर देहली

मुद्रक:—श्रीकण्ठ शास्त्री व्याकरणाचार्य एम० ए०

धर्मप्रेस कमलानगर देहली

नोट:—युक्तियुक्त उत्तर दे सकने वाले महाशय को १००) रुपया पुरस्कार

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तिका स्वतन्त्र भारत के प्राङ्गण में कोई शोभादायक रचनात्मक साहित्य नहीं है। हमें इसके लिखने में न प्रसन्नता है और नांही कुछ चाव है। निश्चित ही इसमें लिखी बातें सोलहों आने सत्य हैं तथापि वे सब अब अविदितप्राय हो गई थीं और आर्यसमाज के हक में यही अच्छा था कि वे नये सिरे से फिर जनता के सामने न आने पातीं। परन्तु दुर्भाग्यवश बाराणसी से निकलने वाली आर्यसमाज की 'वेदवाणी' नामक पत्रिका में लगातार दो लेख इतने उग्र आक्षेपजनक और अरुचिपूर्ण छपे कि अनेक मित्रों ने हमें उनका उत्तर देने के लिये विवश कर डाला। कथित 'वेदवाणी' होने का दावा करने वाली पत्रिका में ऐसा घासलेटी असाहित्य छपे इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है?

उत्तरणीय लेख ही बहुत बड़ा था अतः उसके उत्तर का विस्तृत हो जाना भी स्वभाविक ही था। समाचार पत्रों के कई अङ्कों में छपने पर इसके पूर्वापर का स्वारस्य बिगड़ जाता इसलिए विवश होकर इसे पुस्तकाकार ही प्रकाशित करना पड़ रहा है। पाठक पढ़ें और सत्यासत्य का निर्णय करें।

—प्रकाशक

दूध का दूध और पानी का पानी

असिसुनिशितधारं यस्य चक्रं सुचारु

मणिकनकविचित्रे कुण्डले यस्य कर्णे ।

अमरशतसहस्रैः शोभिता यस्य माला,

असुरकुलनिहन्ता प्रीयतां वासुदेवः ॥

—:❀:—

खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे

यह लोकोक्ति सत्य ही है कि 'सावन के अन्धे को सर्वत्र हरा ही हरा सूझता है'। इसका ताजा उदाहरण वैशाख वि० २०१७ की वेदवाणी (वाराणसी) में छपा श्री शिवपूजन सिंह कुशवाहा का एक लेख कहा जा सकता है। शीर्षक है 'महर्षि दयानन्द जी तथा आर्यसमाज को समझने में पौराणिकों का भ्रम'। लेखक ने इस तुन्दिल लेख में जो कि इस पत्रिका के १२वें वर्ष के ७वें और आठवें दो अङ्कों में समा पाया है—बहुत हाथ पांव मार कर भगवान् आद्य शङ्कराचार्य, पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज,

एवं स्वर्गीय श्री ज्वालाप्रसाद जी मिश्र, श्री कालूराम जी शास्त्री, कविरत्न अखिलानन्द जी, और जीवितों में श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री सारस्वत एवं विशेषकर मुझ सेवक को भरपेट जली-कटी सुना कर स्वामी दयानन्द को दूध का धुला सिद्ध करने के लिए मिथ्या और असफल प्रयास किया है। जहां तक आप की वकालत का सम्बन्ध है यह कहना पड़ेगा कि आपने एड़ी से चोटी तक का जोर लगाने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। गाड़ीभर किताबों को छान बीन डाला, असत्य को सत्य बनाने की धुन में ईश्वरीय दण्ड और नरक के भय की भी परवाह नहीं की। सचमुच 'षट् शुनस्त्रीणि गर्दभात्' इस नीति वाक्य के अनुसार इन जानवरों से सीखी पूरी नौ की नौ शिक्षाओं को आपने पानी की तरह बहा डाला परन्तु जब दावा ही सर्वथा झूठा हो फिर चतुर वकील भी आखीर आकाश को थेगली लगाने में कैसे सफल हो सकता था। 'यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः'। निःसन्देह कुशवाहा जी की दयनीय दशा काबलेरहम है।

आपने सब कुछ किया परन्तु लेख लिखते समय आपके कूढ़ दिमाग ने ठीक वक्त पर आपको धोखा दिया जो यह मूसल जैसी मोटी बात भी आपके ख्याले शरीफ में न आ सकी कि मान लीजिये ब्रह्मा से लेकर प्रलय काल तक के सभी सनातनधर्मी आपके कथनानुसार चालीस सेरे बुरे हैं तो क्या एतावता दयानन्द जी के कापड़ी [1] कुल का समाधान होगया ? उनके सब दुश्चरित्र छुप गये ? विजया भवानी [2] के लोटे गटकना, मदहोश हो

१—दयानन्द चरित दर्पण पृष्ठ ७।

२—श्री भगवद्दत्त दयानन्दी सम्पादित 'ऋषि स्वरचित जन्मचरित्र' पृष्ठ ३९

कर चाण्डालगढ़ के शिवालय वाले बन्दी के पेट में घुस बैठना, हुक्का[१] थुक्का आकुल्ली-रूप तमाल की त्रिविध त्रिवेणी में तरोताजा रहना, कृष्णाभ्रक के कुश्ते खाना, रमाबाई[२] को मेरठ में बुला कर सैकेण्ड क्लास का किराया और दुशाला भेंट कर उसे सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास की क्रियात्मक शिक्षा देना, अन्त में नरक चतुर्दशी की 'अन्धेन तमसा वृता' रात्री में कर्म्मचित लोक को रोम फूट फूट कर प्रस्थान[३] करना—क्या इन सब बातों का एकमात्र यही उत्तर है कि श्री शङ्कराचार्य जी बुरे थे और माधवाचार्य्य बुरा है।

महर्षि या महर्शी

आप दयानन्द जी को 'महर्षि' कहने से बहुत प्रसन्न होते हैं। इसलिए हमें भी वैसा लिखने में कोई आपत्ति नहीं। परन्तु वे मन्त्रद्रष्टा तो थे नहीं यह तो निर्विवाद बात है। हां यह प्रसिद्ध है कि उनको अर्श रोग बहुत रहता था इसकी रोक थाम के लिये वे भांग पीते थे अतः 'अर्शोऽस्यास्तीति अर्शी, महांश्चासौ अर्शी (निपातनात् सकाराकारलोपे) 'महर्शी'—वे अवश्य कहे जा सकते हैं। सो आप दयानन्दी समाज को बतला दीजिये कि वे भविष्य में मूर्धन्य षकार और इकार सम्पन्न अशुद्ध प्रयोग न करके तालव्य शकार और दीर्घ ईकार सम्पन्न, विशिष्ट सार्थक 'महर्शी' उपाधि लिखा करें।

१—देवरत्न जी द्वारा सम्पादित दयानन्द चरित्र उर्दू पृष्ठ २२ और ४१

२—सत्यार्थ प्रकाशालोचन पृष्ठ २३।

३—श्रीमद्दयानन्द पृष्ठ ५३६।

आर्यसमाज की सैद्धान्तिक मृत्यु

हां ! तो दयानन्द जी ने जो किया उसे दुनिया जानती है, अवश्य जानती है और खूब जानती है कि वेदों की ११३१ शाखाओं में से ११२७ पर चौका लगाकर केवल चार शाखाओं को भी उन्होंने अपनी कपोल कल्पित टकसाल में ढाल कर हिन्दुओं को कथन में आर्यसमाजी किन्तु आचार विचार में अपटूडेट ईसाई बना डाला। प्रौढ़ विवाह को प्रोत्साहित करके कन्या गुरुकुलों में कन्यात्व को धूल में मिला डाला। गर्भनिरोधक कृत्रिम उपायों और औषधों की बिक्री बढ़ा डाली। अब आपके छात्रा-आवासों में मूली और बृहती (लम्बा वृन्ताक) तक भी बिना कटे अन्दर जाने वर्जित हैं। जिस मूर्तिपूजा की स्वामी जी ने तीव्र आलोचना की थी अब प्रत्येक दयानन्दी के घर में स्वामी जी की ही मूर्ति सम्मानपूर्वक विराजमान है। आन्तर

सदस्यता जीवन बीमा पालिसी और नाम से पूर्व सम्मानार्थ लगाई जाने वाली 'श्री' तक को भी छीन डाला गया था, और समाजी उन्हें कत्ल करने को उद्यत हो गये—क्या इस् काण्ड से मूर्ति के प्रति दयानन्दियों की भावना व्यक्त नहीं हुई ! यदि कागज की मूर्ति पर जूते के स्पर्श से उसका अपमान होना सम्भव है तो क्या इसी न्याय से श्रद्धापूर्वक पुष्पादि के समर्पण से सम्मान होना अवश्यम्भावी नहीं ?

श्री कुशवाहा जी, आप बिल्कुल नए रंगरूट हैं, इसीलिए नये मुसलमान की भान्ति प्याज तो बहुत खा रहे हैं, परन्तु आपको आर्यसमाज की आभ्यन्तरिक बातों का बिल्कुल परिचय नहीं है। श्रीमान् जी ! जिस मृत श्राद्ध का स्वामी जी ने खण्डन किया था आज उनके अनुयायी 'आर्य्य पर्व पद्धति' नामक पुस्तक के आधार पर नरक चतुर्दशी के दिन स्वामी दयानन्द की तृप्ति के लिये 'ओं परं मृत्यो अनु परेहि' आदि आठ वेद मन्त्र बोल कर खीर की आठ आहुतियें होमते हैं। क्या आपको यह भी विदित नहीं कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रस्तावानुसार और उसी के प्रबन्ध में श्राद्ध के सम्बन्ध में दयानन्द जन्मशताब्दी मथुरा के वेदसम्मेलन के सभापति श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और गुरुकुल के स्नातक श्री मङ्गलदेव तड़ित्कान्त विद्यालङ्कार आदि ने जो ऋष्यर्चा की थी उसके परिणाम स्वरूप उक्त सज्जनों ने वेदों के पूरे दो हजार मन्त्र हिन्दी व्याख्या सहित मृत श्राद्ध के समर्थन में 'यम और पितर' नामक पुस्तक में गुप्त रीति से छाप कर सभा के प्रत्येक सदस्य के पास भेजे थे। सुप्रसिद्ध दयानन्दी पं० राजाराम शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर ने तुम्हारी तरह जीवन भर तो आर्यसमाज की वकालत

की-और वह भी झूठी, परन्तु मृत्युकाल आसन्न होने पर जब अन्तरात्मा ने उन्हें धिक्कारा तो पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये अपने अथर्ववेद भाष्य में मृतश्राद्ध विषयक सब मन्त्रों की मृतश्राद्ध परक यथार्थ व्याख्या कर डाली। कुशवाहा जी! आप तो व्यर्थ ही कुशाओं का भार उठाए भारवाही बन रहे हैं, कुशाओं का उपयोग भी तो वस्तुत: मृत श्राद्ध में ही होता है। सनातन धर्म के अन्यान्य सिद्धान्तों के समर्थक केवल सौ पचास वेद मन्त्र होने के कारण यदि किसी देवानाम्प्रिय को उनमें सन्देह भी हो तो हो सकता है, परन्तु जिस मृतश्राद्ध का समर्थक वेद का पूरा तीन तिहाई भाग हो उसे भी जो समाज न माने उसे अपने आपको वैदिक कहते कुछ तो लज्जा आनी चाहिये।

क्या आर्यसमाज अब भी कर्म्मणा वर्णव्यवस्था का दम भरता है जब कि तुम साक्षर होते हुए भी अभी तक जन्मजात कुशभारवहन से उन्मुक्त न हो पाये। कोई जन्मना 'कुँवर' का कुंवर है तो कोई 'ठाकुर' का ठाकुर है। आर्यसमाज की नाक ला० मुन्सीराम ने स्वयं अपने आपको ब्राह्मण मान कर श्रद्धानन्द बनकर अपने नौकर एक जन्मना ब्राह्मण की लड़की को तो अपनी पुत्रवधू [1] बना लिया परन्तु अपने परिवार की मूर्खा= शूद्रा कन्याओं को किसी भगी चमार को विवाह देने की हिम्मत न दिखाई। यदि वस्तुनः तुम जन्म सिद्ध वर्ण व्यवस्था का कुछ भी महत्त्व नहीं मानते तो फिर दयानन्द की कापड़ी जाति सुन कर आग बगूला क्यों होते हो? और झूठ पर झूठ बोल कर उन्हें उत्तम ब्राह्मण वंशज सिद्ध करनेका झूठा प्रयास क्यों करते हो?

१—खुला चैलेञ्ज, में हरदत्त जिज्ञासु का एक लेख पृष्ट १०४।

अवश्य ही दयानन्दी समाज कापड़ी जाति को कमीना समझता है तभी तो उनका अन्तरात्मा किसी कमीने का शिष्य होने में शर्म मानता है।

जिस समाज के प्रवर्तक ने शूद्रों को [१] यज्ञोपवीत न देने का और मन्त्र संहिता न पढ़ने का आदेश दिया हो, आर्य्यों के घरों में शूद्रों को नाक [२] पर कपड़ा बान्ध कर प्रविष्ट होने की–नाकोदम करने वाली–आज्ञा दी हो, हवन में उनके घर का अग्नि भी अग्राह्य [३] बतलाया हो, वह समाज भी आज शूद्र-हितैषी होने का स्वांग भर सकता है क्या? जो स्त्रियों को ग्यारह ग्यारह [४] खसम करने की खुली छूट देता हो वह समाज कभी भारत की पतिव्रता महिलाओं का कल्याणकारक हो सकता है?

वेदों का जनाजा तो स्वयं दयानन्द जी ने ही निकाल डाला था परन्तु दयानन्द का जनाजा उनके अनुयायिओं ने तब ही निकाल डाला था जबकि इलाहाबाद के दयानन्दियों ने सत्यार्थ-प्रकाश की दूसरी आवृत्ति प्रथमावृत्ति से सर्वथा भिन्न स्वयं लिख कर मृत स्वा० दयानन्द के नाम पर छपा डाली थी। और रहा सहा मुर्दा जलील अब तुम सब कर रहे हो जबकि अभी तक सत्यार्थप्रकाश में द्विज विधवा का पुनर्विवाह निषेध [५]

१–सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय समुल्लास)

२–सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

३–संस्कार विधि (आरम्भिक विवरण)

४–सत्यार्थप्रकाश (चौथा समुल्लास)

५–सत्यार्थ प्रकाश (चौथा समुल्लास)

कन्याओं और बालकों की सहशिक्षा का खण्डन [1] सहभोज का खण्डन [2] आदि बातें काले अक्षरों में छपी रहते भी इसके सर्वथा विपरीत करते हो। इस तरह दयानन्दी समाज की धार्मिक मृत्यु तो वर्षों पहले हो चुकी थी। वह केवल कथित सोशल रिफार्मर के रूप में कई दिन सिसकता रहा, परन्तु जब से यह पुरोगम भी कांग्रेस ने अपना लिया तब से उसके जीवित रहने का केवल एकमात्र आधार अब यह रह गया है कि वह कभी हैदराबाद सत्याग्रह का नाम लेकर तो कभी पञ्जाब हिन्दी सत्याग्रह का नाम लेकर हिन्दुओं की किसी दूखती रग को पकड़ कर आम लोगों से चन्दा इकट्ठा करले और फिर उस आन्दोलन में बुरी तरह मुँह की खा कर बेशर्मी से उसी धन के द्वारा तुम लोगों के धर्मभय (?) पिचके पेटों की पालना करता रहे !

झूठी डींग

आप क्या सभी दयानन्दी बड़े गर्व से यही डींग हांका करते हैं कि 'यदि दयानन्द जी न होते तो सर्वत्र भारत में मुसलमान और ईसाई होते।' परन्तु दयानन्द जी अपनी प्रिय शिष्या रमाबाई को भी ईसाई होने से न बचा सके। वह उनके जीवन-काल में ही अपने पत्रों द्वारा स्वामी जी को करारी फटकार देती हुई-स्पष्ट शब्दों में यहां तक लिखती हुई—कि 'तुम्हारे मन में और है वाणी में और है तथा कर्म्म में और ही है, अतः दुरात्मा [3] हो'—ईसायन बन गई। कल तक भी उसकी ईसाइन

१—सत्यार्थप्रकाश (दूसरा समुल्लास)

२—सत्यार्थ प्रकाश (एकादश समुल्लास)

३—रैमल द्वारा प्रकाशित रमादयानन्द का पत्र व्यवहार।

लड़की मिस मनोरमा अपनी माता द्वारा बताई हुई दयानन्द जी की रंगीन बातों का ढोल पीटती थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी अपने औरस पुत्र हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार (प्रथम स्नातक गुरुकुल कांगड़ी) को ईसाई होने से न बचा सके[१]। प्रसिद्ध है कि वह विलायत में किसी लेडी के चक्कर में पड़ कर वापिस भारत लौटा ही नहीं। यहां उसकी विवाहिता साध्वी धर्मपत्नी सुभद्रादेवी विधवा की भांति पवित्र जीवन बिताती रही। लाहौर आर्यसमाज का मन्त्री महाशय धर्मपाल सकुटुम्ब मुसलमान बन गया। मेरठ का एक विशिष्ट आर्यसमाजी वैश्य परिवार आज भी ईसाई बना हुआ है और मेरे पास में ही कमलानगर में रहता है, जो तुम्हारी आभ्यन्तरिक दशा का भद्दा चित्र खींचता है। आप जरा यह तो बतलाएं कि दयानन्दी समाज ने अपने अन्यून पचहत्तर वर्ष के जीवनकाल में कितने अफगानी, इराकी, इरानी, अर्बी और टार्किस आदि मुसलमानों को हिन्दु बनाया ? अथवा कितने बर्तानवी, फ्रांसीसी जर्मनी किंवा अमेरिकन आदि ईसाइयों को हिन्दु बनाया ? अरे भाई ! ये ही बताओ कितने अफ्रीकन हब्शियों को 'आर्य्य' बना डाला ? **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** तुम्हारा यह मन्त्रांश केवल मोटो के रूप में कमरे की शोभा बढ़ाने के लिये ही है या इसका शतांश किंवा सहस्रांश भी कभी कुछ किया है।

'मलकाना' क्षत्रियों के पुनः संस्कार के समय जब हम लोग वहां जाते थे तो स्वामी श्रद्धानन्द जी भी मस्तक पर चन्दन पोत कर 'जय रामजी की' बोल कर वहां प्रविष्ट हो पाते थे। क्योंकि मलकाना लोग दयानन्दियों को अछूत मानते थे।

१—खुला चैलेन्ज पृष्ट १०३।

कदाचित् आप हमसे भी यही प्रश्न करें कि सनातनधर्मियों ने कितने विधर्मी हिन्दु बनाये तो मेरा उत्तर होगा—मैं नाम बदलने में विश्वास नहीं रखता किन्तु काम एवं हृदय बदलने का मैं पक्षपाती हूं। अतः रसखान सरीखे अगणित गण्यमान मुसलमान पूर्वकाल में मैंने हिन्दुधर्म के विश्वासी बनाये थे और अब भी स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्द द्वारा पाश्चात्य देशों के अनेक ऊंचे खानदानी लोगों को आचार और विचारों में हिन्दुधर्माभिमानी बनाया गया [1] है।

जब चाहें तब निबट लें !

आपको जबर्दस्त शिकायत है कि मैं (माधवाचार्य्य) रातदिन दयानन्द जी को गाली देकर अपने पापी पेट को पाल रहा हूँ। कुशवाहा जी, आपको मेरे विषय में यह निर्मूल भ्रम है। क्योंकि मैंने छोटी बड़ी सब मिला कर पचासों पुस्तकें लिखी हैं परन्तु आप उनमें से एक का भी ऐसा नाम नहीं बता सकते जिस में कि मेरी ओर से दयानन्दी समाज का खण्डन करने में पहल की गई हो। मेरे सभी ग्रन्थ आर्य्यसमाजियों की ओर से लिखे ट्रैक्टों किंवा लेखों में किये गये आक्षेपों के मुँह तोड़ किन्तु सभ्यतापूर्ण समाधान में ही लिखे गये हैं। यह बात दूसरी है कि भगवत्कृपा से वे प्रायः ऐसे अकाट्य बन गये हैं कि कोई दयानन्दी उनका खण्डन लिखने की हिम्मत न कर सका न भविष्य में करने की आशा है। आप मेरी जिन बातों को गाली समझते हैं वे वस्तुतः बावन तोले पाव रत्ती सच्ची हैं। यदि कुछ हिम्मत

१—रामकृष्णमिशन की रिपोर्ट।

हो तो सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा को तैयार कीजिये मैं प्रश्न उपस्थित करता हूँ और दयानन्दी समाज के सब पण्डित मिल कर उनका उत्तर दें। सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश मान्य पतञ्जलि शास्त्री अथवा अन्य कोई निष्पक्ष व्यक्ति निर्णायक मध्यस्थ रहें।

वस्तुतः दयानन्दी समाज के पास मेरे लेखों का कुछ भी उत्तर है ही नहीं, तभी तो वे कलम से कलम का उत्तर न देकर 'रंगीला ऋषि' पुस्तक को जब्त कराने के लिये कोर्ट में पहुंचे थे। वह पुस्तक चाहे जब्त हो गई परन्तु वे सब के सब दुश्चरित्र तो अब भी 'दयानन्द चरित दर्पण' आदि पुस्तकों में सप्रमाण सुरक्षित हैं। शास्त्रार्थ जैसे एकान्त-विद्वन्निर्णेतव्य विषय को लेकर भी मेरठ [1] डीडवाणा और बदायूं आदि की अदालत में दयानन्दी पहुंचे आखीर सब जगह मुँह की खानी पड़ी। महाशय विहारीलाल आर्य्योपदेशक के लिखे हुए क्षमापत्र की तो अभी तक रोशनाई भी नहीं सूखी [2] है।

रहा पापी पेट का प्रश्न—सो पेट तो सभी दयानन्दियों के भी लगा ही है। यदि कुछ मोटेपन के कारण आप को मेरे पेट के पापी होने का इलहाम हुवा है तो मुझ से कहीं अधिक मोटा तो वह आपके दादा गुरु दयानन्द का था। अपनी इसी व्याप्ति के अनुसार क्या उन्हें महापापी कहियेगा ? वस्तुतः मेरा स्मरण आते ही दयानन्दियों के मस्तिष्क का स्तर स्थिर नहीं रहता ! उक्त सारे लेख में अन्यान्य सनातनधर्मी पण्डितों के तो आक्षेपों का

१—'मेरठ का मुकदमा' श्री मदनगोपाल द्वारा सम्पादित।

२—'दयानन्दियों की खबड़ खौं घौं'

उत्तर देने का तो प्रयास किया गया है परन्तु मेरे लेख किंवा लेखांश का भी उत्तर देने की बजाय—कुढ़ कर-जल कर-दग्ध हृदय हो कर केवल मेरे व्यक्तित्त्व पर मिथ्या अपवाद लगा कर आत्म-सन्तोष अनुभव कर लिया गया है। श्रीमान् जी ! पेट किसी व्यक्ति विशेष का ही पापी नहीं होता। पुरातन कवियों ने तो सर्व-साधारण पेट के ही बुरा होने की शिकायत की है। यथाः—

इयमुदरदरीदुरन्तपूरा यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमिः ।

कथमपि न सहे भवादृशानां कुटिलकटाक्षनिरीक्षणं जनानाम् ॥

पुनश्चः—सभी बिगारी पेट के सभी बिगारी पेट ।

भूख न होती पेट में भूषन होता पेट ॥

अच्छा मान लीजिये कि सनातनधर्मियों का पेट 'पापी' है और दयानन्दियों पेट सोलह आने 'धर्मात्मा' है। हम गणेश की भान्ति लम्बोदर हैं और आप लोग अन्नभक्ष वायुभक्ष क्या सर्वथा—'अनुदरा कन्या' के ही उदाहरण भूत हैं, पर इन सब बातों से दयानन्द जी दूध के धुले कैसे सिद्ध हो गए ?

आगे आप लिखते हैं कि मैं कई स्थलों में दयानन्दी पण्डितों से शास्त्रार्थ में पराजित हो गया फिर भी अपनी पुस्तकों में अपनी विजय का ढिंढोरा पीटता रहता हूं। निश्चित ही यह पंक्तियें आपने केवल दयानन्दी समाचारपत्रों में झूठमूठ छपे समाचारों के आधार पर ही लिखी हैं अन्यथा मेरा अनुमान है कि आज तक आप ने स्वयं अपनी आंखों न कभी मेरा शास्त्रार्थ देखा है न अपने कानों सुना ही है। अब जरा कानों की खिड़कियें खोल कर सुन लीजिये। मेरे जितने शास्त्रार्थ छपे हैं उनमें साथ २ निर्णायक मध्यस्थों के निर्णय भी छपे हैं। उनमें कई व्यक्ति प्रायः

उभयपक्षसम्मत अभी भी जीवित हैं आप चाहें पत्र व्यवहार द्वारा उनसे पूछकर आर्यसमाज की पराजय की पुनः तसल्ली कर लें। और सब से सीधा रास्ता तो यह है कि 'घी लुढ़के बर्तन परमाण' 'न चोर गया न अन्धेरा गया' आप ही हिम्मत करके एक आयोजन कर डालें। मेरा 'स्थायी चैलेञ्ज' [1] तो बीसों वर्षों से दयानन्दी समाज के शिर चढ़ा है ही, अपने कथित आर्य पण्डितों को भी बुला लो। ध्यान रहे उनको पहिले से यह सूचित करने की गलती मत कर बैठें कि 'माधवाचार्य्य आ रहा है' अन्यथा बहाने बनाकर वे सब जवाब दे देंगे, जैसा कि अक्सर अन्यत्र दे देते हैं। बस हो जाय एक तगड़ा दंगल फिर आप स्वयं जान सकेंगे कि आपके यह कथित आर्य पण्डित कितने पानी में हैं।

कदाचित ऐसा दंगल करने की हिम्मत न हो तो श्रीमती वेदवाणी या भेदवाणी जी को ही तैयार कर लें वह लिखित शास्त्रार्थ के लिये अपनी तन्वी तनू खोल दे जैसा कि हमारे पत्र वाराणसेय 'सिद्धान्त' ने जीवन भर अपना कलेवर विरोधियों के लिये खोल रक्खा था। बस, मेरे इसी लेख से ही लेखबद्ध शास्त्रार्थ का श्रीगणेश हो जाय। शुभस्य शीघ्रम्।

दयानन्द मत हिन्दु धर्म के लिये खतरा !

आपको श्री दीनानाथ शास्त्री के विषय में जबर्दस्त शिकायत है कि वे ईसाई मुसलमानों के आक्षेपों का तो उत्तर देते नहीं परन्तु दयानन्द जी पर आक्षेप करते हैं।' श्रीमान् जी ! ईसाई

१—दयानन्दियों की लबड़ धौं धौ पृष्ठ ४।

मुसलमानों से सनातनधर्म को उतना खतरा नहीं है जितना कि दयानन्दियों से है, क्योंकि ईसाई अपनी बात का बाइबिल के नाम से प्रचार करते हैं और मुसलमान कुरान के नाम से। वेदाभिमानी आस्तिक हिन्दु किसी वेदातिरिक्त पुस्तक से प्रभावित नहीं हो सकता। यही कारण है कि जितने भी हिन्दु ईसाई बनते हैं वे प्रायः पिछड़ी जातियों के ही लोग हैं जो धन के प्रलोभन से प्रेरित होते हैं। इसी प्रकार जितने मुसलमान बने थे वे प्रायः तलवार के भय से ही बने थे। हमें आज तक एक भी ऐसा ईसाई या मुसलमान नहीं मिला जो कि उक्त मतों को किसी दार्शनिक आधार पर हिन्दु धर्म से अच्छा मान कर विधर्मी बना हो। आर्यसमाज नाम तो लेता है वेदों का और बातें बताता मुसलमानों और ईसाइयों वाली। सो वेदानभिज्ञ सीधे साधे हिन्दु वेदों पर अपने श्रद्धातिरेक के कारण आर्यसमाज के जाल में फंस जाते हैं। मुसलमान तलवार के बल से भी हिन्दुओं की शिखा मिटा सकने में सफल न पाये, लाखों हिन्दु हल्दी घाटी में लड़ कर मर गए, सात सौ वर्ष तक केवल शिखा के लिये लड़े, दीवारों में चुने गए, तिल तिल करके जलाए परन्तु शिखा न मिटी, परन्तु अब आर्यसमाज के बाइबिल सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास) की इस पंक्ति से कि 'गर्म देश होतो चुटिया कटा डालो' आज के नब्बे प्रतिशत युवकों के शिर से चुटिया चम्पत हो गई। जो काम औरंगजेब तलवार से न कर सका वही काम स्वा० दयानन्द जी ने अपनी कलम की नोक से कर डाला। आज जो नाम में आर्य किन्तु काम में अपटुडेट ईसाई दीख पड़ते हैं वे सब दयानन्दी समाज के अस्तित्व का अभिशाप है। तभी

तो स्वर्गीय कविरत्न जी कहा करते थे कि—'ममाजी से नमाजी अच्छे'।

आपने सारस्वत जी की तो शिकायत की, परन्तु मेरा धन्यवाद करने की शिष्टता न दिखाई, क्योंकि मैं अपने प्रत्येक ग्रन्थ में आर्यसमाज की आलोचना से पूर्व पदे २ पहिले ईसाई और मुसलमानों को आड़े हाथों लेता हूं। आप को मालूम हो हम लोगों ने अपने प्रचार की सीमाएं निश्चित कर रक्खी हैं, तदनुसार धर्मविरुद्ध राजनैतिक विचारधारा के खण्डन का ठेका पूज्य करपात्री जी महाराज ने ले रक्खा है, दयानन्दी लेखकों की चिल्लपों के उत्तर का सिविल महकमा श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने संभाला है और दयानन्दी फक्कड़ों की शङ्काओं की लङ्का के दहन का एवं कालनेमियों के मुखमर्दन का फौजदारी महकमा मुझ सेवक के सुपुर्द है। आप का यह केस भी मेरे ही क्षेत्र में आता है इसलिये शान्त लेखनी को पुनः हर्कत में आना पड़ा।

विधर्मियों के एजेन्ट

अच्छा जी! आपने ईसाइयों की 'धर्मतुला' का उत्तर लिख कर मेंडकी की टांग तोड़ डाली—चलो इस लेख से आपके ट्रैक्टों की कुछ तो बिक्री हो ही जायगी। यदि पत्रिका में पुस्तक का सीधा विज्ञापन छपाते तो प्रबन्धक प्रति इञ्च दो चार रुपए तलब करते। अब एक ढेले मे दो शिकार हो गए। हां! तो श्रीमान् जी 'धर्मतुला' में ईसाइयों ने जो कुछ भी हिन्दु धर्म पर आक्षेप किये हैं वे सब सत्यार्थप्रकाश आदि दयानन्दी ग्रन्थों के झूठे उदाहरणों के आधार पर ही तो लिखे हैं। मुसलमानों के लिखे

'सीता का छिनाल' आदि ट्रैक्ट, मिसमेयो की 'मदर इण्डिया' यह सब खुराफात तुम्हारी ही काली करतूतों के तो फल हैं। आप लोग ही तो ऐसा मैटर देने के लिए विधर्मियों के एजेन्ट हैं। आप ने जो 'धर्मतुला' का उत्तर दिया है वह मैंने देखा नहीं, परन्तु मैं अपने अनेक कटु अनुभवों के आधार पर कह सकता हूं कि आपने तत्रस्थ पुराण और इतिहास सम्बन्धी आक्षेपों के उत्तर में यही कहा होगा कि "हां! उनमें अवश्य ऐसी बातें अङ्कित हैं तभी तो आर्यसमाज उनको मानता नहीं"। एक बार हैदराबाद दक्षिण के सद्दीक मुहम्मद दीनदार की लिखी पुस्तक 'सर्वरे आलम' के उत्तर में स्वर्णकार रामचन्द्र देहलवी आदि दयानन्दी उपदेशकों ने वहां यही कह डाला था। जिससे यहां के हिन्दुओं को पन्द्रह हजार रुपए खर्च करके केवल उत्तर के लिए जुटाए हुवे इस आर्य सम्मेलन से बहुत निराशा हुई थी अन्त में इसका मुंहतोड़ जबाब सनातनधर्मियों को ही लिखना पड़ा था।

यहां तक आपके लेख की भूमिका में आये हुवे भावों की समीक्षा, हुई अब आगे की बात सुनिये।

आर्यसमाज नाम अवैदिक और संकीर्ण

आपने श्री दीनानाथ शास्त्री द्वारा 'धर्मालोक' में दिये गए आर्यसमाज के परिचय की समीक्षा करते हुवे लिखा है कि— 'इसे दयानन्दी-मत लिखना भूल है, स्वामी जी ने नया मत नहीं चलाया वरन् वैदिकधर्म ही आर्यसमाज है'।

प्रतिसमीक्षा—सब जानते हैं पहिले पहल सन् १८७५ में बम्बई में चूहों से प्लेग की बीमारी चली और ठीक इसी सन्

में इसी नगर में चूहे के चेले दयानन्द की कृपा से पहिला आर्य-समाज बना। चारों वेदों, छःहों शास्त्रों, समस्त आर्ष वाङ्मय में कहीं भी 'आर्यसमाज' शब्द नहीं मिलता। यूं तो 'आ' अक्षर कहीं और 'र' तथा 'य' अक्षर कहीं—इसी रीति से स, मा, और ज वर्ण भी वर्णमाला तक में यत्र तत्र लिखे मिल सकते हैं, इसी भांति आर्य शब्द कहीं और समाज शब्द अन्यत्र कहीं लिखा मिल ही जायगा परन्तु संस्थावाचक आर्यसमाज कहीं प्रयुक्त नहीं हुवा। अतः प्रथम तो आर्यसमाज नाम केवल अवैदिक ही नहीं अपितु अशास्त्रीय अमानवीय असैद्धान्तिक और कपोलकल्पित है। भङ्ग की तरङ्ग में—जैसा कि हम अनुपदं सिद्ध करेंगे—स्वामी दयानन्द जी को इस नाम के घड़ने में स्वयं अपने मन्तव्य का भी ध्यान नहीं रहा, 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' कर डाला। वह सुनिये कैसे—स्वामी जी ने वेद प्रमाण पूर्वक 'तिस्रः प्रजा आर्य्याः' लिख कर यह सिद्ध किया है कि द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों) का ही नाम आर्य है, बाकी शूद्रों का नाम दस्यु (डकैत) किंवा म्लेच्छ (अनार्य अनाड़ी) है। इस तरह स्वामी जी के लेखानुसार ही आर्यसमाज सार्व-जनिक संस्था नहीं हो सकती। फिर 'समाज' शब्द भी चिन्तनीय है। 'समाजो ब्राह्मणानाम्' इत्यादि व्याकरण उदाहरणों से यह शब्द ब्राह्मणों के समूह में ही रूढ़ है। क्षत्रियों के समूह को 'उदाज' कहा जायगा और पशुओं का झुण्ड 'समज' कहा जायगा। इसलिये आर्यसमाज का वेदों से न तो सैद्धान्तिक सम्बन्ध है और नांही अन्य कोई बादरायण सम्बन्ध ही है। यहां तक कि 'नाम' मात्र का भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो कोरा

चालीस सेरा दयानन्द का मनघड़न्त गरमागरम नया ताजा पन्थ है। इसलिए शास्त्री जी का इसे दयानन्द मत लिखना सर्वथा उचित है, और सोलहों आने सत्य है।

दयानन्द जी निश्चित ही कापड़ी थे

आपने कई अपने पराए लोगों के प्रमाण उद्धृत करके व्यर्थ ही 'भेदवाणी' के कालम काले किए हैं। आप पहिले यह तो समझ लेते कि आखीर 'कापड़ी' किसी सांप छछुन्दर का नाम नहीं है। किन्तु वे भी खरे खासे साढ़े तीन हाथ के मनुष्य ही हैं। परन्तु नटों की भांति पंचायती उत्सवों में नाचना गाना, मुर्दों के आगे कीर्तन करना—यह इनका पेशा होता है। स्वभावतः व्यभिचार करेवा पत्यन्तर परिपाटी घट स्फोट आदि कुरीतियें भी दुर्भाग्यवश परम्परा से इनमें चली आती हैं। अमृतसर के भाटड़े, पर्वतीय कंजर, बिहार के संजोगड़े, तलंगाना के पोटे आदि, इसी तरह अन्य प्रान्तों में भी अन्यान्य नामों से कापड़ियों से मिलती जुलती जातियें पाई जाती हैं। जिनमें न्यूनाधिक प्रायः ऐसी ही कुरीतियें विद्यमान हैं। कहने को ये सब अपने को पतित ब्राह्मण ही मानते हैं। लोगों ने 'ब्राह्मण' शब्द को वर्ण वाचक न मान कर वास्तविक में एक पंथ सा बना डाला है। 'यस्य क्वापि गतिर्नास्ति तस्य वाराणसी गतिः' जिसके और कहीं सींग न समाएं—बस वह चट्ट अपने को ब्राह्मण कहने लगता है। हमारे देखते २ कई जातियें ब्राह्मण होने का दावा करने लग पड़ी हैं। इसी लिये तो दशविध विशुद्ध ब्राह्मण, कुल और आचार की खोज किये बिना केवल ब्राह्मण का नाम रखने वाले मात्र से रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते। अस्तु, श्रीमान् जी! श्री श्री ११० स्वा० दयानन्द जी महाराज भी कापड़ी-कुल कमल-

कदम्ब-पोषणपरायण पूषणायमान पुण्यजन थे। आप उन्हें बलात् दुराग्रहात् औदीच्य बता कर उक्त कापड़ी जाति के बढ़ते हुवे गौरव को क्यों फूटी आंखों देखना नहीं चाहते? चर्मकार जाति रैदास का नाम लेकर जीती है। कसाई सदने का नाम गौरव से ले लेते हैं। गई बीती वेश्याएं भी गणिका का दम भर लेती हैं आप कापड़ियों को स्वा० दयानन्द का नाम लेकर ऊंची नाक करने का उनका जन्मसिद्ध अधिकार क्यों छीनना चाहते हो? हां तो स्वामी दयानन्द जी निश्चित ही कापड़ी जाति में समुत्पन्न थे यह बात श्री जियालाल जी के लिखे जीवन-चरित्र से सिद्ध है। शायद आपकी या किसी अन्य लेखक की कलम से लिखा हुवा प्रतिवाद लेखक जियालाल जी के लेख का उत्तर बन जाता यदि यह मामला कलमों की नोकें घिसाने तक ही सीमित रह जाता, परन्तु श्रीमान् जी! यह मामला तो आर्यसमाज द्वारा दोनों पक्षों के सबूतों की खूब छानबीन कर लेने पर श्री जियालाल जी ने और स्वयं दयानन्दियों ने भी प्रामाणिक सिद्ध कर दिया है। तभी तो मैं कहता हूं कि आप नये मुल्ला हैं अतः प्याज बहुत खाते हैं परन्तु पूर्व घटित घटनाओं का आपको कुछ पता नहीं। अब आप ही बतलाएं कि जो बात स्वामी दयानन्द के स्वरचित स्वकथित और स्वलिखित जीवनचरित्र से प्रामाणिक स्वीकार की जा चुकी हो अब आपके ये दयानन्दी लेखकों द्वारा ही लिखे हुवे एकतर्फा झूठे उद्धरण दयानन्द के कापड़ी खानदान पर कैसे पर्दा डाल सकते हैं? सो जैसे दयानन्दियों ने स्वयं पेशावर की अदालत में जा कर सत्यार्थप्रकाश को व्यभिचारवर्द्धक ग्रन्थ सिद्ध करवा लिया। मेरठ की अदालत में

स्वयं दावा दायर करके स्वा० दयानन्द और रमाबाई के सम्बन्ध को मनूक्त अष्टविध मैथुन की कोटि का मान लिया ठीक इसी-प्रकार श्री जियालाल जी की पुस्तक को भी अदालत में न ले जाकर स्वा० दयानन्द के कापड़ी होने की बात पर भी अमिट मुहर लगवा ली। अब यह कलङ्क कलम घिसाने से धुलने वाले नहीं हैं। सम्भवतः आपने 'दयानन्द छल कपट दर्पण' पुस्तक अपनी आंखों नहीं देखी, यदि देख पाते तो यह गड़ा मुर्दा उखाड़ कर बदबू फैलाने की भूल न करते। सुनिये उक्त पुस्तक पर दो आवरण पृष्ठ चढ़े हैं। पहिले टाइटल पर इस पुस्तक का नाम छपा है—'दयानन्द चरित्र दर्पण', जिसके लिये उन्होंने लिखा है कि आर्यसमाजियों ने मुझ (जियालाल) से प्रार्थना की कि कम से कम इसका भयंकर नाम तो बदल दीजिये। सो यह पुस्तक प्रामाणिक सच्ची है परन्तु मानवता के नाते हम उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुवे नये नाम 'दयानन्द चरित दर्पण' का टाइटल लगा रहे हैं। इस तरह दयानन्दियों की कटी नाक पर नमक छिड़कते हुव उन्होंने दूसरा टाइटल एवं पूरी पुस्तक पर वही पुराना नाम 'दयानन्द छल कपट दर्पण' ही छपा रहने दिया है। इसलिये दीनानाथ शास्त्री का यह लिखना कि 'जिस का खण्डन आर्यसमाज नहीं कर सका नितान्त सत्य है बिलकुल ठीक है।' हमारे शास्त्री जी जरा लिहाज से काम लेते हैं। मैं स्पष्टवादी हूं—मैं उनकी बात का समर्थन करते हुवे इतना और अधिक लिख देता हूँ कि न तो आर्यसमाज अभी तक दयानन्द के कापड़ी कुलोत्पन्न होने का खण्डन कर सका है और न भविष्य में खण्डन कर पाएगा, क्योंकि यह विषय कलम का

न रहकर कानून का विषय बन गया है। अब तो यदि दयानन्दी आकाश कुसुम का सेहरा सिर पर बांध कर सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे खटखटाएं और वहां कभी कोई वन्ध्यापुत्र जज मरुमरीचिका के जल से मुँह धोकर शशश्रृंग निर्मित फौन्टेनपेन से लिख डाले कि दयानन्द जी बिलकुल 'अकापड़ी' थे अर्थात सन्यासी होने के नाते कपड़े पहिनते ही नहीं थे—नङ्गधड़ङ्ग रहते थे, फिर भी उनका कौपीन लिंग के सम्बन्ध से तो कापड़ित्व अव्याहत ही बना रहेगा।

श्री वैष्णवाचार्यों पर मिथ्या आक्षेप

संस्कृत में कहावत है कि—आम्रान् पृष्टः कोविदारान् आचष्ट। पूछी आकाश की कही पाताल की! दयानन्द के कापड़ी कुल का असफल प्रतिवाद करते २ कुशवाहा जी के दिमाग में जनून सवार हो गया, अप्रासङ्गिक हांक उठे कि वैष्णव सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक शठकोप जो अस्पृश्य जाति के थे। जिस व्यक्ति को यह भी विदित न हो कि श्री वैष्णव सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक तो—'श्री लक्ष्मीनाथसमारम्भाम्' इत्यादि दैनिक परम्परा प्रार्थना के अनुसार श्री लक्ष्मीनाथ हैं, वह व्यक्ति दयानन्द के कापड़ित्व से खिसिया कर वैष्णवाचार्य को ही बुरा भला न कहे तो और क्या करे? महाशय जी! जिस दक्षिण प्रान्त के आचार्यों की आप बात कर रहे हैं उस प्रान्त में तो आज भी अस्पृश्यों की मर्य्यादा अक्षुण्ण है। वैसे श्रीसम्प्रदाय में भक्ति और शरणागति का अधिकारी मनुष्य मात्र है। अस्पृश्य भी अपने धर्म का पालन करते हुवे 'अलवार' हो सकते हैं, इसमें हमें ताना

देने की कौन बात हुई ? दयानन्द जी के झूठे लेख के आधार पर आप जिन पर कटाक्ष करना चाहते हैं वे महात्मा तो ऐसे साधु सेवी थे कि अपने घर की समस्त वस्तु, यहां तक कि शूर्प तक बेच कर भी परमार्थ में लगा दिया था। जब आप बहुत हाथ पांव मारने पर भी दयानन्द को 'अकापड़ी' सिद्ध न कर पाए तो 'घी न खाया कुप्पा ही बजाया सही' न्यायानुसार दयानन्द जी को अभंगी सिद्ध करने चले।

भङ्गड़ होने के अकाट्य प्रमाण

आपको शिकायत है कि पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज ने स्वा० दयानन्द के सम्बन्ध में यह क्यों लिखा कि—'कई आर्यसमाजियों ने भी स्वा० दयानन्द के विषय में भी कहा है कि स्वा० जी ने भांग पी कर अमुक अंश लिख दिया था।' इस लेख पर आपको दो आपत्ति हैं। एक तो श्री करपात्री जी महाराज को उन २ दो चार आर्यसमाजियों के नाम अङ्कित करने चाहियें थे जिन्होंने कि स्वामी जी को 'भंगड़' लिखा हो। दूसरी यह कि ऐसी ऊट पटाङ्ग बातों से दयानन्दी मत का खण्डन करना चाहा है। प्रथम आपत्ति के निवारणार्थ हम यहां उन प्रसिद्ध आर्यसमाजियों के नाम अङ्कित करते हैं जिन्होंने कि स्वा० दयानन्द जी का भंगड़ होना प्रकट किया है।

(१) स्वा० दयानन्द जी ने ही स्वयं लाहौर के अपने एक व्याख्यान में [1] यह प्रकट किया था कि मुझे भग पीने की बहुत बुरी लत थी। एक बार अधिक भंग पी कर नशे में मदहोश हुवा चाण्डालगढ़ नामक गुजरात के किसी ग्राम के शिवालय के

१—थ्योसोफिस्ट अक्टूबर सन् १८७९।

नन्दीगण में अन्दर घुस कर [1] मैं अचेत लेटा रहा। प्रातः किसी शिवपूजक सती ने जब नन्दी की पूजा के उपलक्ष में उसके मुँह में दही डाली तो मैंने वह चाट ली तब कहीं उस खट्टी दही से मेरा नशा उतरा।

उस नशे में मुझे यह भी स्वप्न सा हुवा कि मानो पार्वती जी शिव भगवान् से कह रही थीं कि दयानन्द का विवाह कर दीजिये और शिव जी मेरे भंगड़ होने की तरफ संकेत करके कह रहे थे कि यह विवाह के योग्य नहीं। मुझे बहुत दु:ख हुवा। यह व्याख्यान उस समय 'थियासोफिस्ट' अंग्रेजी पत्र में छपा था।

(२) इसी का उर्दू अनुवाद लाला दलपतराय जगरावाँ (पंजाब) निवासी [2] ने छपवाया। जिसके उदहरण 'दयानन्द-भाव चित्रावली' आदि पुस्तकों में विद्यमान हैं।

(३) 'दयानन्द दिग्विजय' ग्रन्थ लेखन के उपलक्ष में आर्यसमाजियों द्वारा 'कविरत्न' उपाधि प्राप्त श्री अखिलानन्द जी द्वारा लिखित 'सत्यार्थप्रकाशालोचन' पुस्तक में –'भङ्गं पिबन् काण्डिकालयेषु सुप्तो रमायाः स्तनमण्डलेषु।

(४) श्री सत्यानन्द द्वारा लिखित श्री मद्दयानन्दप्रकाश पृष्ठ ४१।

भङ्ग की तरङ्ग का नमूना

यदि इतने पर भी उनके भंगड़ होने में कुछ सन्देह है तो हम स्वामी जी के यजुर्वेद भाष्य से कुछ मन्त्रों के भावार्थ मक्षिका

१–श्रीमद्दयानन्द प्रकाश पृष्ठ ४१।

२–१९४५ विक्रमी में छपा।

स्थाने मक्षिका उद्धृत करते हैं आप ही जरा उनका तात्पर्य निकालिये—

यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र ६ का दयानन्द कृत पदार्थ—

'हे मनुष्यो! तुम को मनुष्यों के कंधा सब विद्वानों की पहिली क्रिया निरन्तर शिखावटें रुलाने हारे विद्वानों की दूसरी ताड़ना रूप क्रिया अखंडित न्याय करने वाले विद्वानों की तीसरी न्याय क्रिया पवन सम्बन्धी पशु की पूँछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता अग्नि और जल सम्बन्धी जो प्रकाश को देवें वे कोई विशेष पक्षी वा सारस चूतड़ों से पवन और सूर्य जांघों से प्राण और उदान परिपूर्ण चलने वाले प्राणियो चाल तथा निचोड़ और स्थूल पदार्थों से बल को सिद्ध करना चाहिये।'

इसीप्रकार अध्याय २५ मन्त्र ३३ का भापार्थ भी बड़ा मजेदार है। जरा यह देखिये और उसके पद २ से टपकते हुवे मातुलानी के रज स्राव का पान करके स्वयं भी आनन्द विभोर हो जाइये।

कहिये, अब तो श्री करपात्री जी महाराज का लेख कपोल कल्पित नहीं रहा? कई दयानन्दियों की दृढ़ साक्षी से और स्वयं स्वामी जी के अपने इकबाल से उनका भांग पीना सिद्ध हो गया?

भगवान् शङ्कराचार्य पर मिथ्या आरोप

अब केवल अपनी झेंप उतारने के लिये आपने आद्य शंकराचार्य महाराज के उपनिषद् भाष्य पर जो मिथ्या आक्षेप करने चाहे हैं उनका भी समाधान सुनिये।

न काञ्चन परिहरेत् तद् व्रतम्। छान्दोग्य। १३। इस सूत्रांश का—'**काञ्चिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत् समागमा-**

थिनीम्' ,इसके अतिरिक्त अन्य कुछ अर्थ बन ही नहीं सकता आप प्रसङ्गानुसार स्वयं अन्य कुछ अर्थ करके दिखाएं।

वस्तुत: आप लोग गुरु मुख से कोई ग्रन्थ पढ़ते नहीं केवल 'मुताले' के बल से मतलब निकालना चाहते हैं, वेदों का 'मुताला' होता नहीं। यह म्लेच्छ भाषा का शब्द ही वेद शब्द के साथ बलात् संयुक्त किया हुवा शोभा नहीं देता। वेदों का तो गुरुमुख द्वारा स्वाध्याय होता है। कुछ अकल से भी खुदा पहचाना करो। क्या वेद या स्वामी शङ्कराचार्य जी अपनी सेज पर मां बहिन कोई भी नारी आ जाए सब की छूट दे रहे हैं। निश्चित ही तुम्हारे मस्तिष्क दयानन्द प्रतिपादित भोगमय नियोग से दूषित हो गए हैं अतएव तुम्हें सर्वत्र अपना ही हृदय झलकता दीख पड़ता है। अब सुनिये छान्दोग्य उपनिषद् के इस प्रसङ्ग का अभिप्राय। यहां धारणीय अनेक व्रतों में एक यह भी व्रत बतलाया गया है कि यदि राजा आदि जिस व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियें हों तो उसे उन से विषम व्यवहार नहीं करना चाहिये, सभी से समान दृष्टि से पेश आना चाहिये। उनमें से कोई भी वैधपत्नी ऋतुमती हो तो [illegible] की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऋतुमती सन्तानार्थिनी भार्या की उपेक्षा से ऋतुदान न देने पर धर्मशास्त्र में—**बालघ्नाऽपराधेन विध्यते नात्र संशय:'** प्रमाण अनुसार गोवत्स हत्या का पाप लगता है। प्राय: कामी लोग यौवन के आकर्षण से इसकी परवाह नहीं करते नव विवाहिता के ही चक्कर में पड़ जाते हैं। अत: ऐसे कामाचार की रोक थाम लिये श्रुति हिदायत करती है कि **'न काञ्चन परिहरेत्'** अपनी वैधपत्नियों में से किसी की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। जो भी ऋतुमती हो वही ऋतुदान की अधिकारिणी है, यह भी एक व्रत है।

कहिये इसमें कौन बात आक्षेप योग्य है ? श्री शङ्कराचार्य जी ने 'काञ्चन' शब्द को स्पष्ट करने के लिये जो 'स्त्रियम्' लिखा है वह बहुत साभिप्राय है। क्यों कि वे जानते थे कि कलिकाल में कुशवाहा जी जैसे भी बेधड़क धर्म्मी उत्पन्न हो जाएंगे, जो कामाचार को रोकने के भाष्य वाली श्रुति में भी ग्राम्य वाराह की भान्ति दुर्गन्ध सूँघते हुवे उसे अश्लील बताने की धृष्टता कर सकेंगे अतः उन्हों ने 'स्त्रियम्' स्पष्ट कर दिया, अन्यथा खतरा था कि स्वामी दयानन्द की भान्ति कोई मूसलचन्द 'काञ्चन' से उष्ट्रीम्=गर्धभीम्, वाराहीम् आदि अन्य कुछ कल्पना न कर बैठे जैसी कि स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य में—बकरा मेंढा और बैल से भोग करने की आज्ञा दे डाली है। प्रमाण लीजिये—

हे मनुष्यो ! प्राण और अपान के लिये दुःख विनाश करने वाले छेरी (बकरी) आदि पशु से वाणी के लिए मेंढ़ा (भेड़ा) से परमैश्वर्य केलिए बैल से भोग करें। (यजु०।अ०।२१।म०।६०)

अब तुलना करके आप ही स्वयम् बतलाइये कि कामाचार का नियन्त्रक श्री शङ्कराचार्य जी का भाष्य भङ्ग की तरङ्ग में लिखा जान पड़ता है या अनेन पशुभोग की भी खुली छूट देने वाला रंगरंगीले स्वामी दयानन्द जी का भाष्य ?

आर्यसमाज में मांस पार्टी

मेरा अनुभव है कि जब कोई व्यक्ति निरुत्तर हो जाता है तो वह प्रकृत प्रसङ्ग को छोड़ कर 'आंय बांय सांय' उचारने लग जाता है। यही दशा म० कुशवाहा की हो रही है। श्री करपात्री जी महाराज ने दयानन्दी वेदभाष्य के जो उदाहरण

देकर उन्हें भंग की तरङ्ग में लिखे कहा है, उचित तो यह था कि महाशय जी अन्यान्य वेदभाष्यकारों के किये उन २ मन्त्रों के अर्थों के साथ स्वामी जी के भाष्य की तुलना करके यह सिद्ध करते कि स्वामी का अर्थ सर्वोत्कृष्ट है, षड्ङ्गों के सर्वथा अनुकूल है। परन्तु महाशय जी यह कुछ कर सकने की हिम्मत न दिखा कर बिना ही प्रसङ्ग श्री शङ्कराचार्य जी के उपनिषद् भाष्य पर ही मिथ्या आक्षेप करके अपना दिल बहलाने लगे। ठीक है 'दिल बहलाने को गालिब यह खयाल अच्छा है'। परन्तु उनको यह विदित नहीं कि स्वा० दयानन्द जी ने अपनी संस्कार विधि के प्रथम संस्करण में उक्त सभी उदाहरणों को उद्धृत करके गर्भाधान संस्कार में तीतर बटेर आदि आपके बताए सब मांसों को खाने का दम्पति के लिए विधान किया है। जिसे दूसरी आवृत्ति में निकाल दिया गया है। तथापि वर्षों वादविवाद चलने के अनन्तर आखीर आर्यसमाज में दो पार्टियें बन गईं। स्वा० श्रद्धानन्द उस समय लाला मुन्शीराम जिज्ञासु के रूप में थे, वे और महाशय कृष्ण जो अब भी जीवित हैं घास पार्टी के नेता थे जो मांसाहार को अवैदिक मानते थे। महात्मा हन्सराज प्रोफेसर दीवानचन्द आदि मांस पार्टी के नेता थे, जो मांसाहार को वेदविहित और स्वामी दयानन्द द्वारा समर्थित घोषित करते थे। इन दोनों पार्टियों में वर्षों संघर्ष चला। घास पार्टी का उर्दू पत्र 'प्रकाश' म० कृष्ण के संपादकत्व में लाहौर से चलता था और मांस पार्टी का पत्र 'आर्य गजट' म० खुशहालचन्द खुरसन्द (सम्प्रति स्वामी आनन्द) के सम्पादकत्व में चलता था। इन दोनों पत्रों में एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हुवे व्यक्ति गत आक्षेपों तक की भी नौबत आ गई थी। उस समय एक कन्या का अवैध प्रेम पत्रालाप तक छाप कर उससे यह सिद्ध

किया था कि घास पार्टी के नेता होने का दम भरने वाले लोग घर में सपरिवार स्वयं मांस खाते हैं। यह सब काण्ड उक्त पत्रों की पुरानी फाइलों में अब भी सुरक्षित है। यदि आप को बहुत शौक हो तो इस दुर्भाग्यपूर्ण किन्तु मजेदार किस्से को स्वयं देख कर तसल्ली कर सकते हो।

हां मांसपार्टी का पलड़ा भारी था अतः जोधपुर आर्यसमाज की ओर से तो पूरे अढ़ाई सौ पृष्ठों की 'मांस भोजन विचार' नामक पुस्तक छापकर संहिताभाग के **'अजमनज्मि पयसा घृतेन'** आदि सैंकड़ों मन्त्र उद्धृत करके बकरे के तत्तद् अगों से उखाड़े गए मांस को वैदिक विधि से घी मसाले डाल कर पकाने तक का भी सर्वाङ्गपूर्ण विधान छाप डाला था।

कुशवाहा जी ! आपने यह लेख लिख कर सनातनधर्मियों का बड़ा भारी उपकार किया है क्यों कि उपर्युक्त घटनाओं के ज्ञाता पुराने सनातनधर्मी महोपदेशक तो एक २ करके स्वर्गवासी हो चुके थे और ये गुप्त रहस्य पुराने हो जाने के कारण हमारे नये उपदेशकों को प्रायः विदित नहीं थे। मैं भी दयानन्दियों के दम तोड़ देने के कारण उक्त पुराने शस्त्रों को सामने प्रतिपक्षी न होने के कारण न्यस्त कर चुका था सम्भव है व्यर्थ पड़े २ इनको जंग ही लग जाती परन्तु आपने एक बार फिर मुझे अपने पुराने शस्त्र संभालने का अवसर देकर उक्त छुपी बातों को पुनः नई पीढ़ियों तक पहुंचा देने में सहायता प्रदान की है। अब यह बातें पचासों वर्ष के लिये पुनः नई हो गईं। आर्यसमाजी चाहे आप को गड़े मुर्दे उखाड़ने के कारण भला बुरा कुछ भी कहें मैं तो अपने पक्ष की ओर से धन्यवादार्ह समझता हूँ। अस्तु, बृहदारण्यक (६।४।१७) के **'अथ य इच्छेत्'** आदि उदाहरण का आपने जो भावार्थ किया है वही आपके स्वामी जी ने भी

किया था, इसलिए इसका उत्तरदातृत्व दयानन्दी समाज पर ही है। रहा श्री शंकराचार्य जी के भाष्य का समाधान, तो उसमें आपके अर्थ का द्योतक कोई शब्द है ही नहीं। आपने "खावे" यह शब्द अपनी ओर से सम्मिलित किया है—शांकर भाष्य में 'अश्नीयात भक्षयेत् खादयेत्' इत्यादि कोई शब्द नहीं है। एतावता ही शङ्कराचार्य जी तो दोषान्मुक्त हैं। हां ! आप मूल श्रुति पर यह आक्षेप अवश्य घड़ सकते हैं क्योंकि उसमें—'अश्नीयाताम्' यह भक्षणार्थक क्रिया विद्यमान है। सो बृहदारण्यक हमारा तुम्हारा दोनों का साझा ग्रन्थ है अतः इसका उत्तरदातृत्व भार भी दोनों पर ही समान रीति से आता है। नियम है कि — 'यथोरेव समो दोष परिहारस्तयोः समः', अर्थात् वादी प्रतिवादी दोनों पर जो दोष समान रीति से आता हो उसका परिहार भी दोनों द्वारा ही करणीय है। सो आप तो कुछ परिहार कर ही नहीं सकते, क्योंकि आपने जो भाषार्थ लिखा है वह शांकर भाष्य का अनुवाद नहीं बल्कि मूलश्रुति का ही भ्रष्ट अनुवाद कहा जा सकता है। आप सुस्पष्ट ही अपने किये अर्थ में स्वीकार करते हैं कि सुयोग्य पुत्र की प्राप्ति के लिये दम्पति को बैल के मांस से मिश्रित ओदक खाना चाहिये। यही संस्कारविधि (प्रथम संस्करण) में आपके दादा गुरु दयानन्द जी की आज्ञा थी इसलिये अब आप ही फतवा दें कि क्या आर्यसमाज की यही वैदिक संस्कृति है ? यवन ईसाइयों के सिद्धान्त और दयानन्द के सिद्धांत में क्या अन्तर है ? आपके दादा गुरु ने यह सब सही दिमाग से लिखा है या भङ्ग की तरङ्ग में ?

मांस शब्द के अर्थ पर विचार

यद्यपि एतावता ही हम भारोन्मुक्त हैं तथापि दकियानूस दया-

नन्दियों को शांकर भाष्य के सम्बन्ध में व्यर्थ ही कुछ भ्रम न बना रहे एतदर्थ हम उसका भी कुछ रहस्य प्रकट कर देते हैं।

यहां आपके आक्षेप का आधार केवल तीन शब्द हैं। पहिला 'मांस' दूसरा 'उक्षा' और तीसरा 'ऋषभ' जिनके अर्थ आपने क्रमशः प्राणी का गोश्त, बैल, और सांड किये हैं। परन्तु आपने यदि संस्कृत भाषा का कोई भी कोश पढ़ा हो और दुर्भाग्यवश वह विस्मृत न हुआ हो तो उसका तीन सौ साठ बार पाठ करके बतायें कि वृक्ष कन्द फल आदि वस्तुओं के सारभाग=गूदा का पर्यायवाची शब्द संस्कृत कोश में क्या है? अमरकोश वनौषधिवर्ग में वृक्षों के सारभाग का नाम मज्जा और बक्कल को त्वचा ही कहा है। जैसे मनुष्यादि प्राणियों की खलड़ी को त्वचा, त्वचा के अन्दर छुपे चिकने भाग को मज्जा, गोश्त को मांस और कठिन भाग हड्डी को 'अस्थि' कहा जाता है इसीप्रकार वृक्ष फल कन्दादि के ऊपरी भाग को त्वचा, गूदा को मांस या मज्जा और गुठली को अस्थि या अष्टि ही कहा जाता है। यथा—

(१) निम्बत्वक् चर्मरोगेषु।

(२) सूक्ष्मास्थि मांसला पथ्या गिरिजाता हरीतकी।

(३) प्रस्थं कुमारिकामांसं जंबीररसभावितम्।
सशृंगवेरलवणमुदरामयभेषजम्॥ (आयुर्वेद निघन्टु)

यहां नीम के बक्कल को 'त्वक्' पहाड़ी हरड़ की गुठली को 'अस्थि' और गूदे को 'मांस' कहा गया है। तीसरे प्रमाण में घी कंवार के गूदे को 'कुमारिका मांस' लिखा है। यदि आप जैसा कोई महाशय 'गदहा' हो तो वह कुमारी का मांस निकालने के लिये अपनी कन्या को ही मार डाले।

सो संस्कृत साहित्य में सारभूत द्रव्य को -अर्थात्—मेवाजात

की गिरियें कन्द मूल फल आदि के गूदे और खीर मावा रबड़ी आदि पदार्थों को मांस कहते हैं। प्राणियों के गोश्त को भी मांसाहारियों के लिये सारभूत द्रव्य होने के कारण ही 'मांस' कहा जाता है।

आर्यसमाज के नेता द्वारा पुष्टि

आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता पण्डित नरदेव शास्त्री वेद तीर्थ ने मांस, उक्षन्, ऋषभ आदि शब्दों के सम्बन्ध में हमारे ही उपर्युक्त अर्थों की पुष्टि की है यथा—

(१) **यदा संयौति अथ मांस भवति** (शतपथ पृष्ठ १५)

व्रीहियवादि की पीठी से बने हुवे अपूपादिक को (मांस) कहा गया है। (य० प० वे० वि० पृष्ठ २६)

(२) **मांसेभ्य एवास्य पलाशः समभवत्।** (शतपथ अ० १२)

इस पलाश वृक्ष के (मांसेभ्यः) गूदों से ही ढाक का गोंद पैदा होता है। यहां मांस का अर्थ वृक्ष का गूदा किया है।

(३) **त्वक् तोक्मानि मांसम्।** (शम० अ० ८।३)

यहां तोक्म को मांस कहा है और कात्यायन के सूत्र सौत्रामणि प्रकरणस्थ १८ वें सूत्र के भाष्य में कर्काचार्य ने '**तोक्मशब्देन यवा विरूढा उच्यन्ते** लिखते हुवे हरे जौं को 'तोक्म' कहा है।

(४) **तस्य यन्मांसं समासीत्तद्गुग्गुल्वभवत्।**

ताण्ड्य ब्राह्मण ने 'गुग्गुल' को मांस के नाम से पुकारा है जो कि गुग्गुल वृक्ष का एक तरह का गोंद होता है।

(५) वैद्यक ग्रन्थों में कहीं २ 'जटामांसी' और मांसारोहिणी औषधियों को भी मांस कहा है।इत्यादि

'उत्तन्' और 'ऋषभ' शब्द का अर्थ

अब जिस 'उक्षा' और 'ऋषभ' शब्द का अर्थ आपने जवान बैल और उससे कुछ अधिक उम्र वाला बैल कर डाला है उस पर विचार कीजिये।

अमरकोश 'वनौषधि वर्ग' में काकड़ासिंगी नामक प्रसिद्ध औषधि के नाम लिखते हुवे लिखा है कि 'शृङ्गी तु ऋषभो वृषः' अर्थात्—इसके शृङ्गी ऋषभ वृष आदि नाम हैं। कहना न होगा कि जैसे बैल के गो, धेनू आदि अनेक पर्याय हैं ठीक वे सब के सब नाम उक्त कन्द के भी हैं। आजकल के सभी वैद्य जानते हैं कि च्यवनप्राश नामक प्रसिद्ध बलवर्द्धक औषधि में भी जो ऋषभ और जीवक नामक दो कन्द डाले जाते हैं वे भी इसी जाति के कन्द हैं। जैसे हरड़ छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती हैं तथा इलायची अजवायन और दाख आदि वस्तु में भी छोटी बड़ी दो प्रकार की होती हैं इसी प्रकार उक्त कन्द भी दो प्रकार का होता है। सो छोटी जाति के शृङ्गी कन्द को उक्षा—आजकल काकड़ासिंगी ऊख या ओखी कहते हैं। और बड़ी जाति वाले को ऋषभ बिदारीकन्द महाकन्द आदि नामों से स्मरण करते हैं। जैसे छोटी दाख को 'किसमिश' और बड़ी दाख को 'मनक्का' कहते हैं। सो दोनों कन्द बलवर्द्धक और वाजीकरण महोषध होने के कारण गर्भाधायक योगों में प्रयुक्त होते हैं तो शङ्कराचार्य जी महाराज ने उक्षा शब्द का स्पष्टीकरण करते हुवे उसे 'सेचनसमर्थः पुङ्गवः' लिखा है जिसका तात्पर्य है कि 'उक्षा'='गर्भाधायक सर्वश्रेष्ठ महौषध' सम्भवतः 'पुंगव' शब्द का बैल अर्थ तो वही पुंगव कर सकता है जिसने कि अमरकोश के विशेष्यनिघ्नवर्ग में—

स्युरुत्तरपदे व्याघ्रः पुङ्गवर्षभकुञ्जराः ।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः ॥

—यह श्लोक भी कभी न देखा हो। इसीप्रकार शांकर भाष्य में 'ऋषभ' शब्द का स्पष्टीकरण भी 'ततोप्यधिकवयाः' लिखा है। जिसका सीधा तात्पर्य है कि जो उक्षाकन्द से भी अधिक बड़ा हो, सो ऋषभ कन्द उक्षा कन्द से बड़ी जाति का होता ही है।

अब बृहदारण्यक के पूरे प्रसङ्ग का अर्थ लगाइये—'जो दम्पति योग्य सन्तति चाहते हों तो उनको गाय के दूध में चावल रांध कर उसमें उक्त दोनों कन्दों का गूदा मिला कर वह 'मांसौदन' अर्थात् खीर खानी चाहिये।' वैदिक 'मांसौदन' को प्रचलित संस्कृत में पायस और आज की हिन्दी भाषा में 'खीर' कहते हैं। आंखें खोल कर नीचे लिखे प्रमाण पढ़ो।

(१) एतद् ह देवाना परममन्नाद्यं यन्मासम् (शतपथ ११। ।१।३)

(२) परमान्नन्तु पायसम् (अमरकोश ब्रह्मवर्ग)

अर्थात्—देवताओं को दातव्य जो मांस नामक द्रव्य है वह परमान्न का ही अपर पर्याय है। दूध बने पायस खीर को परमान्न कहते हैं।

उक्षन् और ऋषभ शब्द का अर्थ कोशों में

(१)कलकत्ता से प्रकाशित (वाचस्पत्य.बृहत् संस्कृताभिधान) नामक कोशों में अष्टवर्गान्तर्गत 'ऋषभ' नामक औषधि लिखा है।

(२) प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् सर मोनियर विलियम्स ने अपने 'बृहत् संस्कृत अंग्रेजी कोश' में 'उक्षन्' शब्द 'सोम' नामक पौधे का पर्याय माना है।

(३) 'ऋषभ' नामक औषधि का आयुर्वेद के अत्यन्त प्राचीन

और प्रामाणिक ग्रन्थ 'सुश्रुत संहिता' के सूत्र स्थान नामक प्रथम खण्ड के ३८ वें अध्याय में (जो द्रव्य संग्रहणीयाध्याय भी कहलाता है) तेंतीस द्रव्यगणों के अन्तर्गत उल्लेख हुवा है।

(४) 'भाव प्रकाश' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में 'ऋषभ' का वर्णन इस प्रकार है—

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ॥
ऋषभो वृषश्रृंगवत्॥
ऋषभो वृषभो वीरो विषाणी ब्राह्म इत्यपि।
जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ॥
मधुरौ पित्तदाहघ्नौ काशवातक्षयावहौ॥

अर्थात्—जीवक और ऋषभक नाम की औषधियां हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती हैं। उनकी जड़ लहसुन के समान होती है। गूदा नहीं के बराबर होता है। छोटी २ पत्तियां होती हैं। इनमें ऋषभ बैल के सींग की आकृति का होता है। इसके पर्यायवाची शब्द-वृषभ, वीर, विषाणी, ब्राह्म, गो, धेनु, अनडुवान्, बलिवर्द इत्यादि सब हैं। जीवक ऋषभक दोनों ही बलकारक शीतल, वीर्य और कफ बढ़ाने वाले मधुर पित्त और दाह शमन करने वाले तथा खांसी वायु एवं यक्ष्मा को दूर करने वाले हैं।

भावप्रकाशकार 'च्यवन प्राश' नामक प्रसिद्ध अवलेह में प्रयुक्त अष्टवर्ग का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके।
अष्टवर्गोऽष्टाभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः॥

अर्थात्—जीवक, ऋषभ, मेदा, महा मेदा, काकोली, क्षीर-काकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ औषधियों का संक्षिप्त नाम अष्ट वर्ग है जो चरक आदि ऋषियों ने कथन किया है।

स्वामी दयानन्द जी की साक्षी

महाशय जी! मैं सत्य ही कहता हूं कि तुम अवश्य ही नये मुल्ला प्याज अधिक खाते हो, क्योंकि जहां तुम्हें सनातनधर्मियों के ५६ टन की वैगन में भी न समा सकने वाले गुरुगम्य ग्रन्थों की तो छाया का भी पता नहीं है वहां अपनी अढ़ाई पुस्तकों का भी ज्ञान नहीं हैं। स्वामी दयानन्द ने तुम्हारी तरह प्रथमावृत्ति संस्कार-विधि में जहां भंग की तरङ्ग में तीतर बटेर और बैल आदि के मांस को भात में मिला कर खाने का उल्लेख कर डाला था वहाँ भाँग उतर जाने पर होश में आ कर हमारी भांति संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास में अप्राप्य उक्त दोनों 'उक्षा' और 'ऋषभ' के स्थानापन्न औषधों के प्रचलित नाम असगन्ध (जो उक्षकन्द का ही अपभ्रष्ट नाम है) और सालम-मिश्री लिख कर उन्हें दूध में उबाल कर दम्पति को पीने का विधान किया है। जरा आंख खोल कर देख लें। सो काकड़ा-सिंगी, असगन्ध, सालममिश्री, विदारीकन्द, शतावरीकन्द इत्यादि नामों से प्रसिद्ध सब औषधियें जीवक, उक्षा, ऋषभ आदि कन्द वर्ग की ही औषधियें हैं जो देश भेद और ऋतु भेद से कई प्रकार की होती हैं। आपको पूज्य करपात्री जी महाराज और दीनानाथ शास्त्री जी की सच्ची बातों से चिढ़ कर माकूल उत्तर देने के बजाए श्री शङ्कराचार्य जी महाराज पर अपना नजला ढलकाना उचित नहीं था। मुझे तो तुम्हारे लेख से यह भान हो रहा है कि स्वामी दयानन्द जी की बेतहाशा पी हुई

भांग का नशा आप पर भी अभी तक सवार है। तभी तो मस्तिष्क का स्तर ठिकाने नहीं है। मेरा सत्परामर्श है कि आप कानपुर से अपनी जूतों की दुकान छोड़ कर कुछ दिन बरेली या आगरे में निवास करें तो अच्छा रहेगा। यदि आपने मस्तिष्क की परवाह न की तो खतरा है कि कल आप–'गोस्तनी' का अर्थ दाख न कर के 'गाय का थन' किया करेंगे। 'गो जिह्वा' का अर्थ 'गाजवान' नामक दवा न करके बैल की जीभ किया करेंगे। 'गोक्षुर' का अर्थ 'गोखरू' न करके बैल का खुर किया करेंगे। 'गोकर्ण' को सर्प न मान कर गाय का कान समझा करेंगे।

यदि आप वैद्य हो जाएं तो फिर वैद्यमाता को अडूसा न समझकर अपनी माता जी को ही घोट पीटने को उद्यत हो जाएंगे। मातुल=धतूरे के स्थान में मामा जी को और मातुलानी =भांग की जगह मामी जी को ही रगड़ डालेंगे। कपिकच्छ-मर्कटी=कौंच के स्थान में बन्दर कछुवें मार डाला करेंगे। परन्तु याद रखना कहीं व्याघ्री=कटेहरी के स्थान में किसी बघेरन को छू बैठे तो वह 'ओं ओं सत्य' कर डालेगी। हां 'कण्टकारी' को यौगिक अर्थ से 'जूता' मान कर घोट पीट डालने में खतरा तो नहीं परन्तु घोटने में देर अवश्य लगेगी। आपकी अर्थ लगाने की योग्यता का पता तो इसी से चल जाता है कि आप अपने परम्परागत जातीय नाम 'कछवाहा' को छोड़ कर जो संस्कृतीकरण के मूर्खतापूर्ण शौक से 'कुशवाहा' बनने लगे हो एतदर्थ भी यदि जरा किसी संस्कृतकोश को देख लेते तो 'अव्यापरेषु व्यापारम्' न करते। क्योंकि 'कच्छ' शब्द भी संस्कृत ही है, जो जलप्राय प्रदेश का वाचक है। इसी हेतु से आज भी गुजरात के समुद्रासन्न प्रदेश का नाम 'कच्छ' प्रसिद्ध है। इस प्रदेश के राज्य भार

को वहन करने वाले क्षत्रिय 'कछवाहा' कहे जात थ, जा काल-काल के प्रभाव से पश्चात् संस्कारहीन व्रात्य हो गए। परन्तु आप इस सार्थक नाम को छोड़ कर निरर्थक 'कुशवाहा' बन बैठे, जिसका अर्थ घसियारा या 'कुशमप्सु च' अमरकोश (नानार्थवर्ग) के इस प्रमाण के अनुसार पानी भरने वाला कहार होता है। चौबे जी चले थे छब्बा जी बनने दुबा जी रह गए। अस्तु।

श्री शङ्कराचार्य जी पर झूठा आक्षेप

आगे आपने 'लाइफ एण्ड टाइम आफ शङ्कर' पुस्तक के दो इंगलिश उद्धरण देकर श्री शङ्कराचार्य जी महाराज को अवैध बालक कहने का जघन्य पाप किया है। परन्तु आपके यह दोनों उद्धरण परस्पर विरुद्ध हैं, पहिले में आपने उनके पिता जी का संसार से विरक्त हो कर निकटवर्ती वन में चला जाना लिखा है। और दूसरे में उनकी माता का विधवा होना लिखा है। इसलिए वह जीवितपतिका थी या विधवा, एक ही लेखक के ये दोनों लेख परस्पर विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं हो सकते। आगे आपने पं० बलदेव उपाध्याय के 'श्री शङ्कराचार्य' ग्रन्थ का जो उद्धरण दिया है वह उपरोक्त दोनों उद्धरणों से विलक्षण है, यदि इन परस्पर विरुद्ध उद्धरणों का समन्वय अभीष्ट हो तो यही तात्पर्य निकलता है कि श्री शङ्कराचार्य जी के पिता स्वभावत एक विरक्त ब्राह्मण थे। और इन की माता जी भी देव पूजा परायण एक परम भक्त स्त्री थी, जो अपने पातिव्रत्य के कारण 'सती' नाम से और असाधारण कोटि की नारी होने के कारण 'विशिष्टा' नाम से संसार में विख्यात थी। पति समय २ पर निकटवर्ती वनों में अमक २ परश्चरण वा मन्त्र साधना को जाते

थे, तो यह भी अपने गृह मन्दिर में—शिव भगवान की सेवा करती रहती थी। इसतरह इन दोनों का आदर्श गृहस्थी जीवन व्यतीत होता था। समय पा कर देवकृपा से यह गर्भवती हुई, अभी बालक गर्भ में था कि दुर्भाग्य से पतिदेव का कैलाशवास हो गया। तब प्रसव काल आने पर उक्त विधवा से भगवान् शङ्कर का जन्म हुवा। क्योंकि विधवा का यह बालक ही सर्वस्व था, अतः वह इससे अत्यधिक स्नेह करती थी इसीलिये सन्यासी होने पर भी श्री शङ्कराचार्य जी माता की विशेष आज्ञानुसार उनके और्ध्वदैहिक संस्कार के समय भी सहसा जा पहुंचे थे। आज भी अनेक बालक जब गर्भ में होते हैं तो पिता मर जाते वे पिता की मृत्यु के पश्चात् विधवा माता से उत्पन्न होते हैं।

श्री शङ्कराचार्य जी की माता का नाम 'सती विशिष्टा'

आगे आप लिखते हैं कि शङ्कराचार्य की माता का क्या नाम था किसी पौराणिक ने निर्णय नहीं किया। परन्तु अनुपदं श्री बलदेव उपाध्याय के उद्धरण में 'माधवाचार्य प्रणीत दिग्विजय' के आधार पर उसका नाम 'सती' और आनन्दगिरि के प्रमाण से 'विशिष्टा' स्वयं लिखते हो, यह तो 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' कथन का ही उदाहरण है। रहा प्रश्न नामों की विभिन्नता का, सो किसी का एक नाम पितृप्रदत्त होता है और विशिष्ट गुण के कारण उसी का अन्य नाम जनता रख लेती है। घर वाले तो प्रायः प्यार में असली नाम का भी संक्षिप्त सा कोई सस्करण कर लेते हैं। जैसे आप अपने को भले ही शिवपूजन सिंह लिखा करें परन्तु आपके घर के बडे बूढे यदि जीवित होंगे अभी तक 'सिब्बू' ही

कहते होंगे। फौजदारी मुकदमात के सिवा आम लोग कुशवाहा जी मात्र से काम चलाते होंगे।

स्वामी दयानन्द के विभिन्न तीन पिता

अच्छा फिर कल्पना कर लीजिये कि सती और विशिष्टा ये दोनों नाम विभिन्न स्त्रियों के ही सही, इनमें से किसी एक के पुत्र श्री शङ्कराचार्य जी महाराज हैं। पुत्र एक ही माता से उत्पन्न हो सकता है अनेक माताओं से नहीं। इसलिये माता का नाम अनिर्णीत रहने पर भी पुत्र पर कुछ आक्षेप नहीं हो सकता। परन्तु स्वामी दयानन्द की तो जहां माता अज्ञात है वहां उनके पिता भी तीन विभिन्न जातियों के विभिन्न नामों वाले और विभिन्न गावों के निवासी स्वयं आर्यसमाजी लेखकों ने लिखे हैं। इसका भी कुछ उत्तर दयानन्दियों के पास है। यथा—

(१) रामविलास शारदा आदि के बनाए 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' आदि पुस्तकों में दयानन्द के पिता का नाम 'टंकारा' ग्राम निवासी अम्बाशङ्कर औदीच्य लिखा है।

(२) श्री जियालाल जी आदि ने 'दयानन्द चरित दर्पण' आदि जीवन चरित्र में रामपुरा ग्राम निवासी हरिभजन कापड़ी लिखा है।

(३) श्री मेधाव्रत आदिने 'दयानन्द दिग्विजय' आदि ग्रन्थों में मोरबी निवासी कर्शन जी तिबाड़ी सहस्रौदीच्य लिखा है।

(४) स्वामी दयानन्द द्वारा स्वयम् लिखित 'थियोसिफिस्ट' में प्रकाशित जीवन चरित्र में—अज्ञात नाम किसी गांव निवासी अज्ञात नाम कोई पहाड़ी ब्राह्मण लिखा है।

कहना न होगा कि उक्त जीवन चरित्रों में केवल श्री दयानन्द जी के पिताओं के विभिन्न नाम ही नहीं लिखे किन्तु उनके निवास स्थान और जातियें भी भिन्न २ लिखी हैं जिनका एकीकरण आकल्पान्त भी कोई दयानन्दी करने में समर्थ नहीं है। इसलिए दुर्जनतोषन्याय से स्वा० शङ्कराचार्य जी की माता के अनेक नाम मान लेने पर भी हम पर कुछ आक्षेप नहीं हो सकता। परन्तु स्वा० दयानन्द के विभिन्न जाति के अनेक पिता सिद्ध हो जाने की दशा में बिना सींग पूंछ हिलाए उन्हें केवल नियोगजन्य सन्तान मानने के अतिरिक्त अन्य चारा ही क्या हो सकता है ? श्री टहलराम गिरिधारी दास सामन्त के 'विश्वासघात' के लेखानुसार स्वा० दयानन्द जी एक जीवितपतिका कापड़ी से परपति द्वारा उत्पन्न सन्तान थे। तभी तो उन्होंने आप सब को भी अपने जैसा बनाने के लिये धड़ल्ले के साथ नियोग करने कराने का आदेश दिया है।

नाम धाम पता न बताने का रहस्य

इस प्रकरण में एक और भी रहस्य ज्ञातव्य है कि स्वामी दयानन्द ने अपने व्याख्यान में अपने गांव और पिता का नाम स्वयं क्यों नहीं बताया। पिता तो सुगृहीत नामधेय होता है। यह भी सम्भावना नहीं की जा सकती कि स्वा० दयानन्द की इस ढलती आयु तक इनके पिता माता जीवित ही थे जो इन्हें बलात् पकड़ ले जाते और ५६ वर्ष के बूढ़े को विवाह बन्धन में बांध डालते। इसका कारण भी श्री जियालाल ने तथा श्री देवरत्न ने बड़ा ही लोमहर्षण सनसनीखेज व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि स्वामी दयानन्द जी अपनी कापड़ी जाति के पेशे के

अनुसार १४ वर्ष की अवस्था तक जनाना स्वाँग भर कर नाचते थे। बांकानेर गाँव के एक पटेल का लड़का इनके रूप लावण्य पर इतना मुग्ध हुवा कि वह अपने घर से बहुत सा गहना आदि द्रव्य चुरा कर दयानन्द को साथ ले कर अवारागर्दी में फरार हो गया। कुछ समय के बाद वह तो रहस्यमय ढग से संसार से विदा हो गया। इस अकाल मृत्यु का रहस्य प्रकट हो जाने के भय से स्वामी जी गुजरात प्रान्त में ही न गए। सिद्धपुर के मेले पर पुलिस के काबू से भी किसी तरह भाग निकलने में सफल हो गए। इसलिए कानून के डर से न अपने गांव का और न पिता आदि का नाम प्रकट किया। यद्यपि इस घटना की सत्यता का दायित्व मूल लेखक पर ही है, परन्तु चूंकि दयानन्दियों द्वारा यह पुस्तक अखण्डित रही और यह कुछ मन लगती सी बात है, अतः अविश्वस्त नहीं कही जा सकती। जो हो, भगवान् जाने, दाल में कुछ काला अवश्य है, जो स्वामी जी ने अपने नाम गांव कुल और माता पिता को छुपाया है वह गुप्त रहस्य से खाली नहीं है।

प्रछन्न बौद्ध कौन ?

आगे आपने कुछ उद्धरणों से श्री शङ्कराचार्य जी पर 'प्रछन्न बौद्ध' होने का आक्षेप करना चाहा है। सो यदि वेदों के सिद्धान्त भाग उपनिषद्, उनके तत्वों का विवेचन करने वाली भगवद्-गीता, एवं उत्तरमीमांसा-दर्शन नामक प्रस्थान-त्रयी को अपनी विवेचना का प्रमाणिक आधार मानने वाले श्री शङ्कराचार्य जी महाराज जैसे व्यक्ति भी 'प्रछन्न बौद्ध' कहे जा सकते हैं तो फिर क्या प्रकृति और जीव दो लाठियों के

सहारे बिना एक डग भी न चल सकने वाले स्वामी दयानन्द के विलक्षण त्रैतवाद को मानने वाले आर्यसमाजी ईश्वरवादी होंगे? कहां अनीश्वरवादी बौद्धों का महायान मत और कहां 'दृष्ट ब्रह्माण्ड के जन्मादि का कारणभूत एक मात्र ब्रह्म है' इसे डंके की चोट सिद्ध करने वाला शांकर सिद्धान्त। यदि वस्तुतः श्री शङ्कराचार्य जी बौद्ध धर्म के ही उद्धारक थे तो फिर भारत व्यापी बौद्धों ने शङ्कर के शास्त्रार्थों से और महाराज सुधन्वा की तीखी तलवार से त्रस्त होकर समुद्र पार सुदूर चीन, जापान, कोरिया और इन्डोनेशिया आदि स्थानों में छुप कर क्यों जान बचाई थी? रहा प्रश्न यह कि आखीर हम घर के लोग भी उन्हें समय २ पर 'प्रच्छन्न बौद्ध' क्यों कह देते हैं? इसका उत्तर यह है कि कुछ द्वैतवादियों का आक्षेप अनीश्वरवादी अंश में नहीं। किन्तु माया को असत् मानने के अंश में है क्योंकि यह बात बौद्धों के शून्यवाद जैसी है। इसलिए अनद्वैतवादी विद्वान् विनोद में 'प्रच्छन्न बौद्ध' कह कर अद्वैतवादियों को चिड़ाना चाहते हैं। यह हमारा घरेलू विचारात्मक संघर्ष है। वेदोक्त आचार पालन में हम सब एक हैं।

क्या गाली गलौज भी तत्व निर्णायक होता है?

श्री नारायण पण्डिताचार्य का लेख उसी कोटिका है जैसा कि दो शिष्यों के विवाद में सेवा निमित्त बांटी गई गुरुदेव की दो टांगो को ताड़ित करने की प्रसिद्ध लोक कथा में आता है किसी मनचले अद्वैतवादी ने सिद्धान्त सीमा पर्य्यन्त आलोचना न करके द्वैतवादी पूज्य मध्वाचार्य महाराज को कोशा होगा तो उसके उत्तर में इधर से श्री शङ्कराचार्य महाराज पर नारायण

का प्रयोग हो गया। इस प्रकार के कलहमूलक लेखों का तत्त्व निर्णय में कोई स्थान नहीं होता। मैंने एक बार पंजाबी मुसलमानों की एक सभा में स्वामी दयानन्द जी की शान में बदकलामी भरा यह गाना सुना—

तेरी सवारी महाशया काले गधे उत्ते आई है।
देख के तेरी लाशनू इल्लां गिद्धां ने खुशी मनई है॥
सुन झूठे वेदां वालियां सिर मुन्ना ते मुखड़ा कालिया।
तेरी...उत्ते दीवा बालिया रोशनी आर्य्यसमाज बिच गई है॥

जब मैं यह अभद्रता सहन न कर सका तो सभाध्यक्ष से पूछा कि क्या यही इस्लाम की सभ्यता है? वह शर्मिंदा हुवा, गाना बन्द करवा दिया गया।

अब यदि कोई व्यक्ति उपर्य्युक्त पद्य को जिसमें कि कोई सैद्धान्तिक आक्षेप न करके कोरी भठियारनों को लजाने वाली गाली मात्र दी गई है—प्रमाण रूप से उद्धृत करके स्वामी जी पर आक्षेप करना चाहे तो यह उसकी हिमाकत ही हो सकती है। जैसी कि नारायण पण्डित के श्लोकों के उद्धरण से हो रही है। फिर क्रोधान्ध व्यक्ति का मस्तिष्क सर्वथा विवेकशून्य हो जाता है वह दूसरों को ऐसी गालियें भी बकने लग जाता है जो कि स्वयं उसे और उसके बाप दादों तक को भी लगती हैं, यथा स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि वेदव्यास को 'कसाई' भक्त प्रल्हाद को 'मूर्ख' श्री शठकोप आदि धर्माचार्य्यों को कंजर, भंगी, यवन, गुरुनानक को दम्भी पाखण्डी ईसामसीह को जंगली=हबशी मुहम्मदसाहिब को व्यभिचारी कहते २ आपे से बाहिर होकर मूर्तिपूजकों को गधा लिख डाला।

अब विचार कीजिये कि १४ वर्ष की आयु तक तो स्वामी जी स्वयं मूर्तिपूजक रहे और उनके बाप दादा तो सब मूर्तिपूजक थे ही, तो क्या उनके ही कथनानुसार वे स्वयं गधे के बच्चे सिद्ध नहीं हो गये।

क्या देव वरदान भी नियोग हो सकता है?

आगे आपने दयानन्दके कापड़ीत्व से चिड़कर भी दीनानाथ जी की कुलीनता सूचक 'सारस्वत' उपाधि पर आक्षेप करने का प्रयत्न किया है, परन्तु इस कथा में वह कौन शब्द है जिससे सारस्वत दाधीच की उत्पति होती हो। आपने ही अपने उद्धरण में ये शब्द उद्धृत किये हैं कि वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती ने प्रकट होकर देवताओं से वर मांगने के लिये कहा, तब देवताओं से वर मांगा। देवाराधन द्वारा प्राप्त होने वाली सन्तति को आप नियोगज बताकर उसकी स्वामी दयानन्द के नियोगजत्व से समता करना चाहते हैं? आज भी गङ्गा यमुना प्रयाग आदि की मनौती मानकर वरप्राप्त सन्तान को गंगादत्त यमुनादत्त और प्रयागदत्त आदि नामों से पुकारा जाता है। आप स्वयं 'शिव पूजन' नाम धराते हैं, निश्चित ही आपका नाम निरर्थक नहीं हो सकता? अवश्य ही आपकी माता ने शिव भगवान का पूजन किया होगा, उन्हीं की कृपा से तुम्हारा जन्म हुवा होगा, तभी ऐसा नाम रक्खा गया है। अब कोई मूर्ख तुम्हें चिड़ाने के लिये 'नियोगज' कहे तो यह कहां तक न्याय होगा? मुझे तो यह आशा नहीं है कि आपको उक्त कथानक में 'वीर्य्य' शब्द देखकर भ्रम हो गया हो, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में 'वीर्य्य' शब्द सामर्थ्य शक्ति आदि के अर्थों में प्रयुक्त होता है। दयानन्दियों की आर्य कन्या पाठशालाओं में

'आर्याभिविनय' का पाठ करती हुई कन्याएं नित्य 'वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि' कह कर वीर्य्य माँगती हैं। निश्चित ही यहां आप अपनी कन्याओं द्वारा शरीरस्थ सप्तम धातु=वीर्य्य मांगने की घृणित कल्पना न करेंगे!

सनातनधर्म में नियोग अवश्य होता था परन्तु वह भोगात्मक नहीं होता था, किन्तु (योगात्मक) होता था जैसा कि नारद स्मृति में प्रकट किया है। 'मुखान्मुखं परिहरन् गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्।', अर्थात् मुख के सामने से मुख दूर रहे, और स्त्री के किसी भी अंग से कोई भी अङ्ग स्पर्श न होने दें, केवल योगशक्ति द्वारा नेत्रों के रास्ते त्राटक क्रिया से योगी अपने अमूर्त द्रव्य 'ओजः' को जो कि आयुर्वेद में वीर्य से भी अति सूक्ष्म अष्टम धातु मानी है-निक्षेप करे। कहाँ दयानन्द जी का ग्यारह पुरुषों से खुला व्यभिचार! और कहां योगक्रिया का आध्यात्मिक चमत्कार!! कहाँ राम २ और कहाँ टांय टांय!!!

पुराणों की प्रत्येक कथा वेदमूलक है

आगे आपने पुराणों की कुछ कथाएं जिनका कि हमारे 'पुराणदिग्दर्शन' ग्रन्थ में विस्तृत समाधान विद्यमान है-लिखकर व्यर्थ कागज काला किया है। इस अंश ने आपकी चोरी का खूब पड़दा फास किया है। आपने हमारा 'पुराण दिग्दर्शन' सामने रख कर – उसमें हमने समाधानों के जो शीर्षक दिये थे वही ज्यों के त्यों चुरा कर अपने लेख में लिख डाले। स्वयम् आक्षेपात्मक शीर्षक बना सकने का भी प्रयास नहीं किया। हमारे किसी भी समाधान पर कुछ भी ननु नच किये बिना केवल यह लिख कर आत्म संतोष कर डाला कि—'श्री माधवाचार्य शास्त्री ने

उपर्युक्त कलंकों को 'पुराण दिग्दर्शन' में वेदों से सिद्ध करने का कुप्रयास किया है'।

महाशय जी ! हमने तो सब कथाओं के समर्थन में संहिता भाग के मन्त्र देकर उन्हें वेदमूलक सिद्ध किया है। फिर हमारा सत्प्रयास आपको कुप्रयास क्यों विदित हुवा ? आप हमारे किसी मन्त्र का उदाहरण देकर सिद्ध करते कि यह मन्त्र वेद में नहीं है। या इसका हमने जो अर्थ किया है वह वेदाङ्ग सङ्गत नहीं है। कुछ आनन्द तो आता। मेरे मन में यह अरमान ही बना रहता है कि दयानन्दी लिक्खाड़ मेरे प्रमाणों और युक्तियों का खण्डन क्यों नहीं करते ? अब लीजिये मैं इस लेख में भी आप की आक्षिप्त कथाओं को वैदिक सिद्ध करने वाले मन्त्रांश यहां उद्धृत करता हूं उनका खण्डन कर दिखाएं—

(१) ब्रह्मा पुत्री समागम—'**पिता दुहितुर्गर्भमाधात्**' (अथर्व ६।१०।१२) (२) असुरों का ब्रह्मा से बलात्कार—'**ते पितरमेत्याब्रुवन् 'रेतो वां असिंचामहै**। (कौशीतकि ।६।१) (३) वृन्दा विष्णु समागम—**नास्य जायाशतवाही कल्याणी तल्प माशये**' (अथर्व ५।१८।१२) (४) कृष्णा कुब्जा समागम—'...**विष्णुरुरुगायो नमस्यः।...सचसे पुरन्ध्र्या**' (ऋग्वेद २।१।३) (५) ब्रह्मा का अपनी लड़की (६) विष्णु का अपनी माता (७) शिव का अपनी भगिनी को भार्या बनाना—'**प्रजापतिः स्वां दुहितरंमधिष्कन्** (ऋग्वेद १०।६१।७) **मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः श्रृणोतु नः** (ऋग्वेद ६।५५।५ (८) बृहस्पति का ममता से बलात्कार—'**दीर्घतम मामतेयो जजुर्वामि दशमे युगे** (ऋग्वेद अ० ८, अ० ३ व १) (९) चन्द्र का गुरु पत्नी समागम—'**तनेजायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीताम्**' (अथर्व० ५।१७।५) श्रीकृष्ण का अर्जुन में गर्भाधान—**अहश्च कृष्णामह-**

रमर्जुनञ्च' (वेद) मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भंदधाम्यहम् (भगवद-गीता) ।

हमने यहां आप की आक्षिप्त दस कथाओं की वैदिकता के समर्थक वेद मन्त्र लिखे हैं। आप इन में से जिसे निर्बल समझें उसको आधार बना कर लिखित शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिये। फिर देखिये हम उक्त वैदिक बीजों के पोषक ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् और श्रौतसूत्रों के प्रमाणों की झड़ी लगा कर आप की कैसी तसल्ली करते हैं।

हमारे 'पुराण दिग्दर्शन' को पढ़ कर आप का अन्तरात्मा तो वैदिकता का समर्थक बन गया होगा, परन्तु आप दयानन्दी 'भल्ले दी हट्टी' नामक जूतों की दुकान के प्रबन्धक हैं, अतः खाए नमक को हलाल करने के वास्ते पुराणों को कोसने के लिये विवश हैं। आपकी इस लाचारी के लिये हमें समवेदना है। भगवान् किसी को दास न बनाए। 'धिक् पराधीनवृत्तिः'।

आगे आप ने श्री पं० दीनानाथ शास्त्री के 'शुक्या शुकः कणादाख्य उलूक्यास्तु सुतोऽभवत्' इत्यादि भविष्यपुराण (ब्रा० अ० ४२) के समाधान पर चिल्लपों करने का प्रयास किया है। और पशु पक्षियों से भोग हो जाने का रोना रोया है। शास्त्री जी ने तो यहां वास्तविक समाधान करने के अनन्तर 'दुर्जन तोष' न्याय से योग को संभोग ही मान लेने पर भी आपाततः इससे भी जन्म प्रधान वर्ण व्यवस्था की ही सिद्धि प्रकट की है। परन्तु आपके नेत्रों पर सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास का भद्दा चश्मा चढ़ा है। अतः सर्वत्र संभोग ही संभोग दीख पड़ता है। 'निज अनुरूप लखहिं सब काही'। यह आक्षेप घड़ते जरा इतना तो सोच लेते कि मुष्टिमेयपक्षियों

से साढ़े तीन हाथ के लम्बे मनुष्यों का दाम्पत्य सम्भव भी हो सकता है या नहीं ? कहां 'तत्सर्वं तपसा साध्यम् तपो हि दुरतिऽक्रमः' इस मनूक्ति के उदाहरण अमोघरेताः ऋषियों के यौगिक चमत्कार ? और कहां आपकी सम्भोगमयी कुत्सित कल्पना ? अन्त में उपसंहार करते हुवे विधर्मियों के झूठे प्रमाणपत्र देकर व्यर्थ आपने पुनः स्वामी दयानन्द को सूर्य रूप में देखने का प्रयत्न किया है। और उनके आलोचकों को उन पर थूकने को प्रयत्न-शील बतलाया है। इसके समर्थन में जब किसी भारतीय अदयानन्दी का कोई प्रमाण उपलब्ध न हुवा तो 'डूबते हुवे को तिनके का सहारा' एक नगण्य और आर्यसमाज की अन्तरङ्ग बातों से सर्वथा अपरिचित पाश्चात्य सज्जन श्री जे० एन० फारुकहर की शरण ली। उक्त लेखक के प्रमाण-पत्र की पोल उसके इन शब्दों से ही खुल जाती है कि स्वामी दयानन्द ने 'नगर २ में जा कर संस्कृत में व्याख्यान दिये।' स्वामी दयानन्द का संस्कृत में दिया एक भी व्याख्यान उपलब्ध नहीं। वे संस्कृत में व्याख्यान दे सकने की योग्यता ही नहीं रखते थे। रमाबाई के साथ उनका संस्कृत में जो पत्र व्यवहार हुवा है उसमें रमा के पत्र बड़े प्रौढ़ संस्कृत में लिखे हुवे हैं। परन्तु दयानन्द ने नाइन्थ क्लास के छात्रों जैसा 'भवति पचति' लिखा है। अतः अनजान पाश्चात्य लेखक का यह प्रमाण-पत्र सर्वथा बोदा और थोथा है।

स्वामी दयानन्द और उसके समाज का असली फोटो

यदि स्वामी दयानन्द जी, उनके ग्रन्थ और दयानन्दियों के विषय में प्रमाण-पत्र ही देखने हैं तो हम उद्धृत करते हैं। जिन को समस्त ब्रह्माण्ड सोलहों आने सही मानेगा—

अव्वल दर्जा मजिस्ट्रेट का प्रमाण-पत्र

"सत्यार्थप्रकाश में व्यभिचार की शिक्षा मौजूद है।"

नोटः—यह निर्णय आज से सत्तर वर्ष पूर्व ८ दिसम्बर सन् १८६१ ई० को पेशावर के मुख्य न्यायाधीश ने जेर दफा ५०/५०२ के मातहत दिया था।

प्रवर न्यायाधीश का प्रबल प्रमाण पत्र

"इस किताब (सत्यार्थ प्रकाश) के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फुहश (बहुत अश्लील) हैं।

नोट :— पेशावर की अदालत के निर्णय के प्रतिकूल दयानन्दियों ने बड़ी अदालत में अपील की तो उसके प्रवर अंग्रेज न्यायाधीश ने पहिले निर्णय को बहाल रखते हुये अपील खारिज कर दी और ऊपर लिखा रिमार्क और सम्मिलित कर दिया।

राष्ट्रपिता गान्धी का यथार्थ प्रमाण पत्र

'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा निराशा-जनक पुस्तक मैंने दूसरा नहीं पढ़ा। उनसे (दयानन्द जी से) हिन्दु धर्म के अर्थ का अनर्थ हो गया।

आर्यसमाजी संकुचित हृदय और झगड़ालु होते हैं वे अन्य मतावलम्बियों से—झगड़ा करते हैं।

(यङ्ग इण्डिया, अप्रैल सन १९२४)

प्रसिद्ध दयानन्दी नेता का खरा प्रमाण पत्र

'सत्यार्थ प्रकाश' को आर्य्यसमाज रूप चर्च का बाइबिल

कह सकते हैं। परन्तु मूर्ख मण्डली में पांचवां वेद समझा जाने लगा है। यह [स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य] सन्तोषजनक नहीं, इस भाष्य को देखकर -- संशय सागर में पड़ जाते हैं।

नोटः--यह सम्मति प्रसिद्ध आर्य्य नेता पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने 'आर्य्यसमाज का इतिहास' पृष्ठ १६३-६५ में लिखी है।

प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेज का लज्जाजनक प्रमाणपत्र

'हम स्वामी (दयानन्द) जी को बड़ा पंडित मानते थे परन्तु अब तो उनके मनुष्य होने में भी सन्देह होता है।

(अन्तिम निवेदन पुस्तिका से)

नोट :— काशी में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और स्वामी दयानन्द में ब्राह्मण ग्रन्थ की वैदिकता पर लेखबद्ध विचार चला था जिसे पढ़कर काशीराज संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ डाक्टर टीबो साहिब ने उक्त प्रमाण पत्र दिया था।

रमाबाई का रमणीय प्रमाण पत्र

' उचित है ऊपर लिखे आग्रह से हट जावें . विरुद्ध आचरण से मन में और वाणी में और कर्म में और। मैं मूर्खों के पराभव से नहीं डरती ... आग्रह से अन्धे हुवे लोगों से भय किया जावे और सत्य को छिपाया जावे'

(दयानन्द लेखावलि)से

नोटः—यह पत्र रमा ने स्वामी दयानन्द को तब लिखा जब

कि उन्होंने सन्यासी का स्वांग भरते हुये भी आयु आदि पूछकर समागम की चर्चा की।

हमारे पास इस प्रकार के अष्टोत्तरशत 'प्रमाण पत्र' विद्यमान है। यदि आप इस शास्त्रार्थ को आगे चलायेगे तो हम उन्हे क्रमशः प्रकाशित करेंगे।

अब आपके लेख का कोई भी आक्षेपांश अनुत्तरित नही रहा–हमने एक ईमानदार देनदार की भाति आपकी मय सूद आना आना पाई पाई चुकती करने का प्रयत्न किया है, इतने पर भी यदि कुछ शेष रह गया हो तो आपके स्मरण दिलाने पर 'भूल चूक लेनी देनी' के अनुसार हम देनदार हैं।

त्रैपितृको दयानन्दः कापड़ीवशलाञ्छनः।
भगाविकृतमस्तिष्को वेदमार्ग व्यलोपयत् ॥१॥
त दुग्धधवल कर्तु पूर्वाचार्यानृषीन्मुनीन्।
योऽनिन्दयत्कुशावाहस्तन्मुखे शर्करार्पिता ॥२॥

—०—०—०—

हमारा मननीय धार्मिक साहित्य

★ पुराण दिग्दर्शन ★

सभी धर्माचार्यो एव चोटी के विद्वानो द्वारा प्रशसित पुराणो की समस्त शकाओ को भगा देने वाला पृष्ठ ८०० मूल्य ८)

★ क्यो (पूर्वार्द्ध) ★

सनातनधर्म की अथ से लेकर इति पर्यन्त सब क्रियाओ के तादृश होने का सहैतुक विवेचन पृष्ठ ७०० मू० ७)

★ क्यो (उत्तरार्द्ध) ★

ईश्वर उपसान, अवतारवाद मूर्ति पूजा, वर्णव्यवस्था, श्राद्ध, तीर्थ व्रत त्योहार पर्व, देवता, उनके स्वरूप वाहन, अश्व गोमेध यज्ञादि का युक्तियुक्त वैज्ञानिक विवेचन पूर्ण ग्रन्थ पृष्ठ ६१५ मू० ८)

पुराणपरिशिष्ट	१)
डाक्टरी गाइड	३)
शास्त्रार्थ पचक	२)
सनातन धर्म	।।।)
चार शास्त्रार्थ	।।।)
लेखबद्ध शास्त्रार्थ	।।
हिन्दू और हिन्दूराष्ट्र	।।।)
शिखा सूत्र	।।।)
हमारे पर्व और त्योहार	।।।)
श्राद्ध विज्ञान	।।)
मूर्ति पूजा विज्ञान	।।)
विवाह विज्ञान	।।)
कबीर चरितम्	।।)
लबड़ धौ धौ	।।)
श्री गणेश	।।)
ॐकार और शिवलिग	४० न०पै०
मर्यादापुरुषोत्तम राम	४० न०पै०
शास्त्रार्थ राजधनवार	।)
गृहलक्ष्मी	।)
पुराण प्रश्नोत्तर माला	।)
आख का शहतीर	।)
रास लीला	।)
कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्	।)
राधा कृष्ण	।)
ढुंढेस्मृति	।)
हमारा गोधन	।)
नास्तिकता से बचो	।)
भावीसकट०	।)
गोपाल सहस्त्रनाम स्तोत्र	।)
निष्कलंक कृष्ण	।)
ब्रह्मापुत्री	२० न०पै०
विष्णुवृन्दा	२० न०पै०
चीरहरण	१२ न०पै०
पराजय पंचक	१२ न०पै०

माधव पुस्तकालय, धर्मधाम, १०३-ए, कमलानगर देहली ।